उन्नीसवीं सदी की हिन्दी आन्दोलन संबंधी कविताओं का आलोचनात्मक अध्ययन (1870-1900)

A CRITICAL STUDY OF POETRY RELATED TO HINDI MOVEMENT OF NINETEENTH CENTURY (1870-1900)

एम. फिल. (हिंदी) की उपाधि हेतु प्रस्तुत लघु शोध–प्रबंध

शोध निर्देशक
प्रो. वीर भारत तलवार

शोधार्थी
विजय कुमार

भारतीय भाषा केन्द्र
भाषा, साहित्य और संस्कृति अध्ययन संस्थान
जवाहरलाल नेहरू विश्वविद्यालय
नई दिल्ली–110067

2013

जवाहरलाल नेहरू विश्वविद्यालय
JAWAHARLAL NEHRU UNIVERSITY
Centre of Indian Languages
भाषा, साहित्य एवं संस्कृति अध्ययन संस्थान
School of Language, Literature & Culture Studies
नई दिल्ली-110067, भारत New Delhi – 110067, India

Dated: 29/07/2013

DECLARATION

I hereby declare that the research work done in this M.Phil. Dissertation entitled **(UNNISAVIN SADI KI HINDI AANDOLAN SAMBANDHI KAVITAON KA AALOCHNATMAK ADHYAYAN 1870-1900) "A Critical Study of Poetry Related to Hindi Movement of Nineteenth Century (1870-1900)"** by me is the original research work and it has not been previously submitted for any other degree in this or any other University/ Institution.

Vijay Kumar
(Research Scholar)

Prof. Vir Bharat Talwar
(Supervisor)
CIL/SLL&CS/JNU

Prof. Rambux
(Chairperson)
CIL/SLL&CS/JNU

" सज्जनों, मैं यहाँ हिंदी भाषा की उत्पत्ति और विकास की कथा नहीं कहना चाहता, वह सारी कथा भाषा विज्ञान की पोथियों में लिखी हुई है। हमारे लिए इतना ही जानना काफी है कि आज हिंदुस्तान के पंद्रह-सोलह करोड़ लोगो के सभ्य व्यवहार और साहित्य की यही भाषा है। हाँ, यह लिखी जाती है दो लिपियों और उसी एतबार से हम उसे हिंदी या उर्दू कहते है पर है वह एक ही। बोलचाल में तो उसमे बहुत कम फर्क है, हां, लिखने में वह फर्क बढ़ जाता है। मगर उस तरह का फर्क सिर्फ हिंदी में ही नहीं गुजराती, बंगला और मराठी वगैरह भाषाओं में भी कमोबेश वैसा ही फर्क पाया जाता है। भाषा के विकास में हमारी संस्कृति की छाप होती है और जहां संस्कृति में भेद होगा वहां भाषा में भेद होना स्वाभाविक है।"

प्रेमचंद

आर्य समाज के सम्मेलन के वार्षिक अवसर पर

लाहौर में दिए गए भाषण का अंश

(23-24 अप्रैल 1936)

अनुक्रमणिका

		पृष्ठ संख्या
भूमिका		i-v
अध्याय-विभाजन		
1.	हिन्दी आंदोलन का उदय और उसकी सामाजिक पृष्ठभूमि	1-28
2.	हिन्दी आंदोलन संबंधित कविताओं का आलोचनात्मक मूल्यांकन	29-57
उपसंहार		58-61
संदर्भ ग्रंथ-सूची		62-65
परिशिष्ठ		66-145

भूमिका

इस विषय पर शोध करने का सुझाव जब शोध निर्देशक ने दिया तो मैंने हामी भर दी लेकिन साथ ही सर ने सचेत करते हुये कहा कि "थोड़ा कठिन काम है। तुम्हें दौड़-धूप भी करनी पड़ेगी। सोच-समझ लो। हड़बड़ी नहीं है। किसी और विषय पर भी शोध कार्य हो सकता है।" लेकिन 'हाँ' कह देने के बाद अब कोई सवाल नहीं था कि इस विषय को छोड़ किसी और विषय पर शोध कार्य किया जाए। इस विषय पर शोध करने को लेकर प्रथमतः मन में यही विचार आया कि 19वीं सदी में हिन्दी आंदोलन संबंधी शोध विषय के जरिये इतिहास एवं साहित्य की भूमिका, उसके अंतर्संबंध तथा साहित्य और इतिहास एक काल विशेष में एक-दूसरे को कितना प्रभावित करते हैं आदि प्रश्नों को सोचने-समझने का अवकाश मिलेगा तथा नवजागरण के संबंध में जो कम जानकारी है उसको भी पुष्ट करने का मौका प्राप्त होगा। इन सब सोच और जिज्ञासा के कारण विषय को लेकर मेरी उत्सुकता एवं उसके शोध की संभावना भी बढ़ गई।

विषय की प्रथम मांग थी कि शोध के लिए हिन्दी आंदोलन से संबंधित कविताओं को पहले इकठ्ठा किया जाए क्योंकि हिन्दी आंदोलन की वैचारिकी को समझने के अभी तक जो भी प्रयास हुए हैं उनमें बहुत कम ऐसे हैं जहां हिन्दी आंदोलन संबंधी कविताओं पर ध्यान दिया गया है और जिन विद्वानों ने ध्यान दिया है उन्होंने भी कुछेक कविताओं को ही आधार बनाया है। वैसे भी इस संदर्भ में कुछेक पुस्तकों को छोड़ दिया जाए तो यह कहा जा सकता है कि ज़्यादातर पुस्तकों में हिन्दी आंदोलन के मूल्यांकन के लिए हिन्दी आंदोलन संबंधी लेखों को ही आधार बनाया गया है जो उस दौर

की पत्र-पत्रिकाओं में छपते थे| भारतमित्र, भारत जीवन, हिन्दी प्रदीप, ब्राह्मण, बिहार बंधु, नागरीप्रचारणी सभा की फाइलों में छपे लेखों के ज़रिये मुझे उस दौर की राजनीतिक-सामाजिक चेतना को भी समझने का मौका मिला| शोध कार्य के दौरान मेरी प्राथमिक कोशिश यही रही कि 19वीं सदी की हिन्दी आंदोलन से संबन्धित कविताओं को एक स्थान पर संकलित करूँ जो उस दौर की तमाम पत्र-पत्रिकाओं में बिखरी पड़ी हैं ताकि शोध कार्य के लिए आधार सामग्री को इकठ्ठा कर सकूँ |

पिछले पाँच-छः सालों से हिन्दी साहित्य का विद्यार्थी रहा लेकिन नवजागरण एवं हिन्दी आंदोलन का मुझे जो जानकारी या ज्ञान का संचित कोश था वह भारतेन्दु से शुरू हो महावीर प्रसाद दिवेदी के रास्ते मैथिलीशरण गुप्त तक आ, खत्म हो जाता था| नवजागरण के संदर्भ में जो आलोचनात्मक समझ थी उसके आदि-अंत में रमविलास शर्मा ही थे| परंतु जे॰न॰यू॰ में आने एवं हिन्दी आंदोलन संबंधी शोध कार्य के जरिये उस अकादमिक बहस से जुड़ने का मौका मिला जो हिन्दी नवजागरण या हिन्दी आंदोलन के संबंध में अपनी ज्वलंतता के कारण ख़ासा चर्चित है| हिन्दी नवजागरण एवं "रस्साकशी" संबंधी बहस के बारे में पहले-पहल जे॰न॰यू॰ तथा बी॰एच॰यू॰ के साथियों से जानकारी मिली थी कि इस पुस्तक ने नवजागरण एवं हिन्दी आंदोलन संबंधी धारणाओं को काफी स्पष्टता और तर्क के साथ सामने रखा है| नवजागरण संबंधी इस अनभिज्ञता ने मेरी जिज्ञासा को सहज रूप से बढ़ाया कि नवजागरण के संदर्भ में और कुछ जाना-बूझा जाए ताकि यह पता चले कि आखिर माजरा क्या है ?

जे॰न॰यू॰, जहां राजनीति एक संस्कृति है, ने बहुत कुछ सोचने-समझने का अवसर प्रदान किया| यहाँ की राजनीतिक संस्कृति 'नो पॉलिटिक्स' के

दौर में दीवारों पर लगे पोस्टर, खाने के टेबल पर पढ़े जाने वाले पर्चों एवं विमर्शों के विवादों, संवादों के माध्यम से छात्र राजनीति के लिए एक सकारात्मक 'स्पेस' को निर्मित करती है। राजनीति की मुखर विरोध-प्रतिरोध के बीच जे॰न॰यू॰ की सबसे बड़ी खासियत यहाँ का 'अंतर अनुशासनात्मक संवाद' है जिसने यह सिखाया कि इतिहास का काम केवल नायक या खलनायक बनाने का नहीं होता है बल्कि सम्पूर्ण तथ्य को सामने लाने का होता है जिसकी ऐतिहासिक चेतना में पक्ष-विपक्ष दोनों की उपस्थिति हो।

आमतौर पर हिन्दी आंदोलन, नवजागरण या 19वीं सदी की हिन्दी साहित्य संबंधी चर्चाओं में हिन्दी आंदोलन तथा गोरक्षा आंदोलन से संबन्धित कविताओं को नहीं रखा गया है। स्पष्ट है कि हिन्दी साहित्य का इतिहास जब लिखा जा रहा होगा तब यह तो असंभव नहीं होगा कि 19वीं सदी की पत्र-पत्रिकाएँ 1930 या 1960 के दशक में उपलब्ध न हों। ज़ाहिर है कि किसी-न-किसी ऐतिहासिक बोध को निर्मित करने के लिए ही नागरी, गोरक्षा आंदोलन से जुड़ी कविताओं को सिरे से साहित्य की दुनिया से गायब कर दिया गया और किसी विचारधारा को सामने रख किसी-न-किसी को साहित्य की दुनिया का नायक बना साहित्य की इतिश्री की जाती रही। 19वीं सदी जिसे विभिन्न तरह के सुधारों की सदी के रूप में भी जाना जाता है, उसी सदी में भाषा, लिपि की बुनियादी मांगों के साथ भाषा की राजनीति की शुरुआत होती है। लेकिन समय के साथ भाषा की राजनीति ने पश्चिमोत्तर प्रांत की राजनीति की भाषा को ही बदल दिया जिसका श्रेय 19वीं सदी के हिन्दी आंदोलन को है ।

इस शोध-प्रबंध का पहला अध्याय 'हिन्दी आंदोलन और उसका सामाजिक प्रभाव' है, जिसमें हिन्दी आंदोलन के उदय की पृष्टभूमि के साथ-

साथ उसके विकास एवं समाज पर पड़ने वाले प्रभाव को विश्लेषित किया गया है। 19वीं सदी का हिन्दी आंदोलन अपने मूल में सांप्रदायिक नहीं था लेकिन औपनिवेशिक शासकों की नीतियों के साथ-साथ हिन्दू-मुस्लिम समुदाय के आपसी टकराव ने हिन्दी आंदोलन को सांप्रदायिक रंग दे दिया। हिन्दी आंदोलन के रूप, चरित्र को समझने का प्रयास पहले अध्याय में किया गया है ।

दूसरा और अंतिम अध्याय शोध का मुख्य अध्याय है जिसमें हिन्दी आंदोलन से संबन्धित कविताओं का आलोचनात्मक मूल्यांकन किया गया है। इसमें कविताओं के माध्यम से हिन्दी आंदोलन के पूरे चरित्र को समझने के साथ यह छानबीन करने का भी प्रयास किया गया है कि साहित्य, इतिहास की चेतना को किस प्रकार गढ़ता है। हिन्दी आंदोलन के समर्थकों ने अपनी कविताओं के माध्यम से उन सांप्रदायिक प्रतीकों को भी गढ़ा, जिसके कारण हिन्दी आंदोलन भद्रवर्गीय हिंदुओं का सांस्कृतिक आंदोलन बन गया। कविताओं के मूल्यांकन को कुछ महत्वपूर्ण बिन्दुओं के आधार पर समझने की कोशिश की गयी है। इस मूल्यांकन में हिन्दी आंदोलन के अंतर्विरोध एवं उसकी सीमा को धर्म, अलगाववाद ,स्त्री संबंधी सोच ,मुसलमान और उर्दू के प्रति हीनता बोध आदि को कविताओं के जरिये विशेष संदर्भों के साथ उभारा गया है ।

अपने शोध-अध्ययन और शोध सामग्री को इकठ्ठा करने में मुझे कई पुस्तकालयों से मदद मिली-जवाहरलाल नेहरू विश्वविद्यालय(नई दिल्ली), नेहरू मेमोरियल एंड म्यूज़ियम लाइब्रेरी (तीनमूर्ति,दिल्ली), नेशनल लाइब्रेरी (कोलकाता), काशी नागरीप्रचारिणी सभा (वाराणसी), हिन्दी साहित्य सम्मेलन (इलाहाबाद)। खासकर नेशनल लइब्रेरी और नागरीप्रचारिणी सभा से कविताओं के अलावा शोध सामग्री एवं इतिहास के पुराने दस्तावेज़ों को भी देखने-

जानने का मौका मिला जिसके कारण शोध कार्य और आसान हुआ तथा शोध दृष्टि का विकास भी हुआ ।

शोध प्रबंध चाहे जैसा भी बन पड़ा हो वह अपने अंतिम रूप में नहीं पहुँच पाता अगर दोस्तों और शुभचिंतकों की मदद नहीं मिली होती। शोध निर्देशक प्रो॰ वीर भारत तलवार का सुझाव, डांट और उत्साहवर्धन तथा शोध कार्य के प्रति उनका विश्वास निरंतर बना रहा जो शोध के लिए सबसे ज्यादा ज़रूरी था। भारतीय भाषा केंद्र के रावत जी को विशेष धन्यवाद जिनके प्रयासों के कारण कोलकाता आने-जाने के लिए विश्वविद्यालय की तरफ से आर्थिक सहयोग मिला तथा दुलारे जी एवं रमेश को भी याद करना ज़रूरी है। दिग्विजय भैया, गणपत दा, बृजेश जी, उदय भैया, मार्तंड भैया,रवि भैया, ओम भैया का सहयोग अपेक्षित रहा जो मिला भी ।आशु सर , वंशीधर, सुशील यति और शशि को विशेष तौर पर धन्यवाद जिनके बगैर यह शोध कार्य पूरा तो हो जाता लेकिन कुछ कमी अवश्य रह जाती । दीपशिखा दी, आरती, मिथिलेश, सुनीता, संदीप सौरभ, आशुतोष, अभिषेक, नवनीत, किशन, शैलेंद्र, रवि और साथी प्रकाश जैसे दोस्त होने के भी अपने फायदे-नुकसान हैं जिसका एहसास शोध कार्य के दौरान बखूबी हुआ ।तपस दा का कई बार कहा-अनकहा लेक्चर जो हिन्दू-मुस्लिम संबंधों को लेकर सुना उससे भी कुछ मदद की गुंजाइश बनी। अरूण कुमार और सोनु भाई को हार्दिक धन्यवाद जिन्होंने इस लघुशोध को पूर्णता प्रदान की। संगठन 'आइसा' के प्रति आभार-साभार सब कुछ जिसने इतना समय दिया कि इस शोध कार्य को पूरा किया जा सके बाकि जो बच गए उनके लिए पाश के शब्दों में-

"मेरे पास बहुत शुक्राना है

मैं शुक्रिया करना चाहता हूँ"!!

20.07.2013 विजय कुमार

प्रथम अध्याय

हिन्दी आंदोलन और उसका सामाजिक प्रभाव

प्रथम अध्याय

हिन्दी आंदोलन और उसका सामाजिक प्रभाव

हिन्दी आंदोलन की शुरुआत सन् १८६८ ई॰ में राजा शिवप्रसाद 'सितारेहिंद' द्वारा अंग्रेज़ी सरकार को दिए गए मेमोरेंडम से हुई थी। राजा शिवप्रसाद का यह मेमोरेंडम संयुक्त प्रांत की अदालतों तथा सरकारी कामकाज में नागरी लिपि को लागू करने की मांग को लेकर था। १९वीं सदी में हिन्दी या नागरी की मांग से जिस हिन्दी आंदोलन की शुरुआत हुई उसमें सरकारी संरक्षण के लिए उर्दू के बरक्स हिन्दी और नागरी का दावा पेश किया गया। १९वीं सदी में नागरी-हिन्दी की मांग को लेकर उर्दू का जब विरोध किया गया तब उसके विरोध के तीन प्रमुख आधार थे। पहला, भाषा शास्त्रीय आधार पर उर्दू की कमज़ोरी। दूसरा, उर्दू की लिपि को सांस्कृतिक दृष्टि से नुकसानदेह बताना। तीसरा आधार था भाषा-लिपि का भौतिक पक्ष, जिसके माध्यम से प्रशासन में नौकरी-रोज़गार प्राप्त किया जाता था। हिन्दी समर्थकों और उर्दू के पक्षधरों ने एक दूसरे की भाषा की व्याकरणिक कमजोरी एवं शब्दावली की आलोचना की। इस हिन्दी आन्दोलन के लिए पत्र-पत्रिकाएँ एक महत्वपूर्ण केंद्र के रूप में उभरीं जिससे उर्दू के विरोध में हिन्दी का संघर्ष चलाया गया।

१९वीं सदी के हिन्दी आंदोलन के संदर्भ में ब्रिटिश शासकों की भाषा नीति का ज़िक्र आवश्यक है। औपनिवेशिक भाषा नीति के तहत ब्रिटिश प्रशासन ने सन् १८३७ ई॰ में फारसी के स्थान पर अंग्रेज़ी को सरकारी भाषा या प्रशासनिक भाषा के रूप में स्वीकृत किया और नीचे के कार्यालयों में कामकाज के लिए फारसी लिपि में लिखी जाने वाली उर्दू को शामिल किया। उच्चस्तरीय शासन कार्यों में अंग्रेज़ी का प्रयोग एवं प्रांतीय भाषा के नाम पर

फारसी आधारित उर्दू को चुनना ब्रिटिश प्रशासन की भाषा नीति का केवल हिस्सा भर नहीं था बल्कि उसका राजनीतिक संदर्भ भी था। यह राजनीतिक संदर्भ हिन्दू और मुसलमान समुदाय से जुड़ा हुआ था जो पिछले कई वर्षों से एक साथ रहते आ रहे थे| ब्रिटिश प्रशासन का राजनीतिक संदर्भ हिन्दू-मुस्लिम के अलगाववाद से जुड़ा हुआ था जिसका सीधा लाभ ब्रिटिश प्रशासन को होता| इस तरह की भाषा नीति के तहत ब्रिटिश शासन ने संयुक्त प्रांत की बहुभाषी विविधता के बीच हिन्दी-उर्दू की जनव्यापकता एवं उसके बड़े क्षेत्र को अनदेखा कर दिया जहां हिन्दी-उर्दू मिश्रित 'हिंदुस्तानी' का प्रचलन था। यहाँ हिंदुस्तानी का अर्थ उस शैली से है जिसे नागरी लिपि में १९वीं शताब्दी से पहले लिखा जाने लगा था। संयुक्त प्रांत में भौगोलिक रूप से हिंदुस्तानी का प्रभाव क्षेत्र बड़ा था, जिसमें इस प्रांत में बोली जाने वाली विभिन्न बोलियाँ भी आती थीं। लेकिन ब्रिटिश प्रशासन ने बहुसंख्यक जनसमुदाय की भाषा हिंदुस्तानी और लिपि नागरी की उपेक्षा करते हुए फारसी आधारित उर्दू को सरकारी कामकाज हेतु प्रांतीय भाषा के रूप में लागू कर दिया।

ब्रिटिश शासन के भाषा-संबंधी विचारों को आगे बढ़ाने का कार्य फोर्ट विलियम कॉलेज (१८०० ई॰ कलकत्ता) ने किया। फोर्ट विलियम कॉलेज में जॉन गिलक्राइस्ट द्वारा सर्वप्रथम हिन्दी और उर्दू को अलग-अलग भाषा मानकर भिन्न-भिन्न शैली से अध्ययन एवं लेखन के ढंग को प्रस्तावित किया गया। फोर्ट विलियम कॉलेज की भाषा नीति के संदर्भ मे आलोक राय ने अपनी किताब 'हिन्दी नेशनलिज़्म' (Hindi Nationalism) में लिखा है, "फोर्ट विलियम कॉलेज से जो अहम चीज़ निकली वह थी दो भाषाओं का सिद्धांत। फोर्ट विलियम कॉलेज ने इस विचार को संस्थानिक अनुमोदन प्रदान किया कि वास्तव में हिंदुस्तानी के दो रूप हैं – एक वह जिसमें

मिली-जुली भाषा को अपनाया गया और दूसरा वह जिसमें से हिंदुओं को ध्यान में रखकर अरबी-फारसी के शब्दों को निकाल दिया गया।[1]

आलोक राय हिन्दी आंदोलन के संदर्भ में भाषायी विवाद के लिए फोर्ट विलियम से निकले दो-भाषा के सिद्धांत को महत्वपूर्ण कारक मानते हैं, जो कमोबेश एक हद तक सही भी है, क्योंकि दो-भाषा सिद्धांत के जरिये ब्रिटिश प्रशासन ने उस भेद को पुष्ट बनाया जिसकी चर्चा गिलक्राइस्ट ने १७९८ ई० में की थी। हिंदुस्तानी की शैलियों के संदर्भ में गिलक्राइस्ट ने लिखा अंततः यह होगा कि हिन्दू लोग स्वाभाविक रूप से हिंदवी (हिन्दी) का समर्थन करेंगे और मुसलमान अनायास ही अरबी- फारसी कि ओर मुड़ेंगे। इस तरह दो शैलियाँ जन्म लेंगी।[2]

दूसरे कारण के रूप में आलोक राय कलकत्ते के पास श्रीरामपुर में ईसाई मिशनरियों द्वारा १८वीं सदी के अंत में खोले गए छापेखाने का ज़िक्र करते हैं। श्रीरामपुर के इन छापेखाने में अक्षरों का टाइप तैयार करने के लिए उन्होंने हिन्दी का खास रूप तैयार किया जो आम बोलचाल के नजदीक होते हुए भी उर्दू से अलग था। कलकत्ता, आगरा व इलाहाबाद में स्कूल बुक सोसाइटियों की भी स्थापना की गयी। उसके लिए हिन्दी के मानकीकृत रूप की तलाश शुरू हुई। इस दौरान नयी शब्दावली और व्याकरण पर ज़ोर बढ़ा व हिंदुओं की हिंदुस्तानी तथा मुसलमानों की हिंदुस्तानी का अलग-अलग ढंग से विकास हुआ।[3]

हिंदुस्तानी की जिन दो नई शैलियों का विकास १९वीं सदी के प्रारम्भ में हुआ था, उसमें विशुद्ध हिंदुस्तानी की झलक सदासुखलाल एवं लल्लूलाल की रचनाओं में स्पष्ट नज़र आता है। सदासुख एवं लल्लूलाल ने अपनी रचनाओं में भाषा प्रयोग के तौर पर उर्दूपन को एकदम दूर रखा। विशुद्ध हिंदुस्तानी भाषा उस हिन्दू जनता के करीब थी जो कथा-पुराण कहती-सुनती

आ रही थी। संवत १८६६ एवं १८७५ में जब ईसाई धर्म पुस्तक 'नए धर्म नियम' एवं बाइबिल का हिन्दी अनुवाद हुआ तो उसकी भी भाषा सदासुख एवं लल्लूलाल वाली भाषा थी। लेकिन लल्लूलाल एवं सदासुख के दौर में ही इंशाअल्ला खाँ की भाषा विशुद्ध हिंदुस्तानी नहीं थी। इंशाअल्ला खाँ की भाषा साधारण जनता की हिन्दी अधिक प्रतीत होती है, जो हिंदुस्तानी की दोनों शैलियों के अतिरेक से मुक्त नज़र आती है।[4]

१८वीं सदी से पूर्व हिन्दी और उर्दू की पहचान किसी जाति या समुदाय विशेष की भाषा के रूप में नहीं थी। हिन्दी और उर्दू दोनों को साहित्यिक भाषा के रूप में देखा-समझा जाता था। आज जिस रूप में हिन्दी-उर्दू हमारे सामने हैं, उस रूप में उनका अस्तित्व १८वीं या १९वीं सदी से पहले नहीं था। दोनों ही भाषाएँ संयुक्त भाषाई परंपरा की उपज थीं, जो लगभग १२वीं शताब्दी में अमीर खुसरो से लेकर १८वीं शताब्दी में नज़ीर अकबराबादी तक हिंदुस्तान के विभिन्न भागों में फली-फूली। हिन्दी-उर्दू की संयुक्त भाषायी परंपरा के लिए १३वीं शताब्दी से हिंदवी या हिन्दी शब्द का प्रयोग किया जाता था। हिन्दी और उर्दू कि परस्पर निकटता एवं समानता का कारण भी यही है कि दोनों का भाषायी मूल एक है। लेकिन हिन्दी और उर्दू के इस मूल स्वरूप को किनारे करते हुए १८वीं सदी के प्रारम्भ में अंग्रेज़ी विद्वानों ने हिन्दी और उर्दू को दो अलग अलग ज़बान के रूप में स्थापित करने का प्रयास किया। उर्दू शब्द का प्रचलन 18वीं सदी के आस-पास चालू हुआ था| इस प्रयास में वे काफी हद तक सफल भी हुए। हिन्दी और उर्दू दो अलग अलग ज़बान है, इस विचार पर जितना बल अंग्रेज़ी विद्वानों ने दिया उतना १८वीं सदी के हिन्दी-उर्दू के विद्वानों ने नहीं दिया।

हिन्दी और उर्दू के बीच भाषा के स्तर पर अलगाव का बुनियादी कारण दोनों भाषाओं के लिखित स्वरूप को लेकर था। स्पष्ट है कि बोलचाल के स्तर पर हिन्दी-उर्दू के बीच गहरा विवाद नहीं था। विवाद सामने तब

आता है जब दोनों भाषाओं की लिपियों का सवाल सामने आता है। १९वीं सदी में हिन्दी आंदोलन का संबंध लिपि के सवाल से ही था। वर्ना हिन्दी और उर्दू के सर्वनाम (वह, मैं, तू), संबंधवाचक (में, पर, से) व क्रियाएँ (खाना, सोना, पीना) सभी लगभग एक जैसी हैं। शब्द भंडार में काफी समानता है। लेकिन हिंदुस्तानी की जो दो शैलियाँ विकसित की गई, उनके जरिये इस समानता को ही मिटाने का उपक्रम किया गया। हिन्दी को संस्कृत एवं उर्दू को अरबी-फारसी से जोड़ा गया। १९वीं सदी में बोलचाल के भाषायी स्वरूप को ध्यान में न रखकर लिखित स्वरूप की तरफ इसलिए ध्यान दिया गया क्योंकि लिपि के साथ रोजगार और सरकारी नौकरियों का सवाल जुड़ा हुआ था।

१९वीं सदी में संयुक्त प्रांत में उर्दू का वर्चस्व था और यह रोजगार की भाषा थी। कोर्ट-कचहरियों में अधिकतर रोजगार उन्हीं लोगों को मिलता था जो फारसी जानते थे। सन् १८३७ई॰ में अंग्रेज़ी प्रशासन ने संयुक्त प्रांत क्षेत्र में २९वें एक्ट के तहत फारसी के प्रयोग को पूर्णतया खत्म कर दिया और अंग्रेज़ी ज्ञान को आवश्यक योग्यता के रूप में शामिल किया।[5] फारसी के प्रयोग को खत्म करना उन लोगों को नागवार गुज़रा जिन्हें महज़ फारसी ज्ञान के आधार पर कोर्ट-कचहरी और सरकारी कार्यालयों में रोजगार मिला हुआ था। इनमें अधिकतर हिन्दू, कायस्थ और मुस्लिम भद्र वर्ग ही शामिल था। १८३७ ई॰ में ही न्यायपालिका के निचले स्तरों पर फारसी के स्थान पर प्रांतीय भाषा को लागू करने के पीछे लॉर्ड ऑकलैंड का वह निर्णय था जिसमें उन्होंने कहा था कि न्यायपालिका एवं रेवेन्यू मुकदमों में कार्यवाही लोगों की ज़ुबान में हो न कि फारसी में। संयुक्त प्रांत एवं बिहार प्रांत में वह स्थान उर्दू को मिला, जिसकी लिपि फारसी मिश्रित थी। फलतः फारसी शब्दों, मुहावरों से भरी उर्दू उत्तर- पश्चिम प्रान्तों में अदालत की भाषा बन गई और नागरी लिपि शासन के कार्यों से बाहर ही रही।

सन् १८३९ ई॰ में एफ॰जे॰शोर॰ ने लॉर्ड मैटकॉफ एवं लॉर्ड हैरिस के सुझावों एवं निर्णयों के कारण मध्य प्रांत के सागर, नर्मदा एवं पर्वतीय अंचल कुमाऊँ में कोर्ट-कचहरी एवं कार्यालयी कामकाज के लिए नागरी लिपि वाली हिंदुस्तानी को स्थान दिया। इसके बावजूद नागरी लिपि अपने समर्थन के अभाव में केवल कुछेक स्थानों पर सफल हो पाई जबकि उर्दू की स्थिति पूरे संयुक्त प्रांत में बरकरार रही।[6]

सन् 1860 के दशक में औपनिवेशिक शिक्षा नीति के तहत वुड डिस्पैच लागू हुआ। डिस्पैच में अंग्रेज़ी एवं देशी भाषाओं में शिक्षा देने का निर्देश दिया गया। 19वीं सदी में अंग्रेज़ी शासन ने अंग्रेज़ी भाषा के माध्यम से शिक्षा को एक छोटे से वर्ग की ओर मोड़ देने की कोशिश की जिसका नवजागरण के बौद्धिक जनों ने विरोध किया। यह वर्ग तत्कालीन समय का भद्र वर्ग था। इसी दौरान बंगाल नवजागरण में विद्यासागर आदि बौद्धिक जनों ने बांग्ला भाषा को बंगाल प्रांत में लागू करवाया। नवजागरण के दौर में बौद्धिक जनों की यह मांग थी कि शिक्षा प्राप्त करने का माध्यम देशी भाषा होनी चाहिए। हिन्दी प्रदेश में राजा शिवप्रसाद 'सितारेहिंद' इस तरह के सुधारवादी कार्यों का प्रतिनिधित्व कर रहे थे। हिन्दी प्रदेश में राजा शिवप्रसाद के अलावा सर सैय्यद अहमद भी थे, जो कि हिन्दी-उर्दू प्रदेश में अभिजात एवं भद्र वर्गीय मुस्लिम समाज का प्रतिनिधित्व करते थे।

समाज सुधार के संदर्भ में शिक्षा को मजबूत हथियार समझने वाले सैय्यद अहमद ने ज्ञान-विज्ञान के विकास के लिए मातृभाषा की वकालत की। इसके लिए उन्होंने पहला स्कूल मुरादाबाद एवं दूसरा स्कूल गाजीपुर में खोला। सैय्यद अहमद के इन पंचायती मदरसों में हिन्दी की पढ़ाई नहीं होती थी। सैय्यद अहमद ने शिक्षा से संबन्धित विकास के लिए १८६७ ई॰ में यूरोपीय ज्ञान-विज्ञान की किताबों का उर्दू में अनुवाद कराने के लिए साइंटिफिक सोसाइटी का गठन किया। सन् १८६७ ई॰ में ही राजा शिवप्रसाद

ने अंग्रेज़ी सरकार को नागरी के पक्ष में 'कोर्ट कैरेक्टर इन दी अपर प्रोविंसेज़ ऑफ इंडिया' नामक मेमोरेंडम दिया।

१८६७ ई॰ में राजा शिवप्रसाद नागरी के पक्ष की लड़ाई लड़ रहे थे तो सैय्यद अहमद का व्यक्तित्व उर्दू के पक्षधर के रूप में सामने आ रहा था। हिन्दी आंदोलन में हिन्दी-उर्दू का अलगाव १८६७-६८ के दौर में ही सतह पर आता है जब प्रान्तों की स्थानीय कचहरियों एवं राजस्व के दफ्तरों में लिपि के सवाल को उठाया गया। हिन्दी आंदोलन में मूल मुद्दा लिपि का था, बोलचाल की भाषा को लेकर नहीं। १९वीं सदी में 'नागरी' का प्रयोग अधिकतर भाषा और लिपि दोनों के लिए होता था। १९वीं सदी में हिन्दी आंदोलन के दौरान अधिकांश हिन्दू नागरी लिपि का पक्ष ले रहे थे ताकि कोर्ट-कचहरी में भाषा की लिपि के तौर पर नागरी को लागू किया जाए। जबकि अधिकांश मुसलमान और हिन्दू कायस्थ और खत्री ब्राह्मण फारसी लिपि को बरकरार रखने पर ज़ोर दे रहे थे। शिक्षा संबंधी सुधार कार्यों एवं अंग्रेज़ी सरकर में अपने रसूख के कारण सैय्यद अहमद १८७० तक मुस्लिम भद्र जनों के बीच बड़े नेता के रूप में उभर चुके थे। सैय्यद अहमद ने प्रारम्भ में हिन्दी या नागरी की खिलाफत नहीं की बल्कि कहा हमारी कचहरियों की ज़बान वह मिली जुली ज़बान होनी चाहिए जिसे आप हिन्दी कहते हैं और मैं उर्दू। इस सवाल पर बहस बेकार है कि यह नागरी लिपि में, रोमन लिपि में या फारसी लिपि में लिखी जाए।[7] लेकिन सन् १८६९ ई॰ में मोहसिन-उल-मुलुक को लिखे खत में "उन्होंने कुबूल किया कि फारसी लिपि में लिखी जा रही उर्दू ही मुसलमानों की निशानी है।[8] यहाँ ध्यान देने योग्य बात यह है कि सैय्यद अहमद के कथनों से जो विरोधाभास पैदा होता है वह राजा शिवप्रसाद द्वारा अंग्रेज़ी सरकार को दिये गए मेमोरेंडम के बाद का है। वुड डिस्पैच संबंधी निर्णय एवं सैय्यद अहमद के उर्दू शिक्षा संबंधी प्रयासों ने हिन्दी आंदोलन के कार्यकर्ताओं को हतोत्साहित ही किया। परंतु

हिन्दी आंदोलन के कार्यकर्ता निराश होने के बजाय एकजुट हुए। इनकी व्यापक सामाजिक एकजुटता का आधार बनी नवजागरण कालीन राष्ट्रवादी चेतना। इस चेतना के केंद्र में १९वीं सदी के प्राच्यविदों की ऐतिहासिक विचार प्रणाली थी जिसमें भारत कि प्राचीनता को एक सूत्र में बांध दिया गया था, जिसकी पहचान धार्मिक मिथकों एवं प्रतीकों से जुड़ी हुई थी। नवजागरण कालीन चेतना में धर्म का प्रभाव इतना ज़्यादा था कि हिन्दी आंदोलन को आगे बढ़ाने के लिए धर्म का सहारा लेना पड़ा। १९वीं सदी के प्रारम्भ में भाषा को धर्म से जोड़ने का जो काम गिलक्राइस्ट जैसे अंग्रेज़ी विद्वानों ने किया था, १९वीं सदी के उत्तरार्ध में (१८७० के बाद का दौर) उसे आगे बढ़ाने का कार्य आर्य समाज , अलीगढ़ आंदोलन , हिन्दी आंदोलन से जुड़े कार्यकर्ताओं एवं पत्र-पत्रिकाओं ने किया।

सन् १८६७ में राजा शिवप्रसाद द्वारा दिये गए मेमोरेंडम के बाद संयुक्त प्रांत कि ब्रिटिश सरकार को १८६९,१८७२, और १८७३ ई॰ में नागरी के पक्ष में और मेमोरेंडम मिले। नागरी के पक्ष में बढ़ते दबाव के कारण अंग्रेज़ी प्रशासन ने १८७२ ई॰ में मध्यप्रांत के नौ जिलों की कचहरियों में उर्दू के स्थान पर देवनागरी लिपि में लिखी जानेवाली उर्दू को अपनाया। नागरी की छिटपुट सफलताओं एवं हिन्दी आंदोलन के बढ़ते दबाव ने भाषा संबंधी आपसी आक्रामकता को तेज़ कर दिया। हिन्दी आंदोलन के बढ़ते दबाव के जवाब में सैय्यद अहमद जैसे मुस्लिम सुधारकों ने हिन्दी को गँवारू और फूहड़ भाषा कहा तो भारतेन्दु हरिश्चंद्र ने उर्दू को नाचने गाने वाली वेश्याओं की भाषा बताया। इस तरह की भद्दी टिप्पणियों से उस पूरे समुदाय पर व्यंग्य होता था जो हिन्दी या उर्दू भाषा से जुड़ा हुआ था।

१९वीं सदी में भाषा के माध्यम से न सिर्फ भद्र वर्ग के नेतृत्व में धार्मिक समुदायों का गठन हो रहा था बल्कि भद्र वर्ग को ब्रिटिश प्रशासन

के प्रति वफादारी निभाने का मौका भी मिल रहा था। भाषा या लिपि के माध्यम से हिन्दू-मुस्लिम भद्र वर्ग के नेताओं ने एक दूसरे को सांस्कृतिक दृष्टि से हीन ठहराने की कोशिश की। विवाद इस बात पर होने लगा की कौन सी भाषा ज्ञान-विज्ञान के आधुनिक विषयों के ज़्यादा अनुकूल है? हिन्दी आंदोलन के मुखर समर्थक एवं ब्राह्मण पत्र के संपादक प्रतापनारायण मिश्र ने अपने लेख 'उरदू बीबी की पूँजी' में उर्दू की तुलना एक ऐसी वेश्या से की जो ऊपरी तौर पर बड़ा दिखावा करती है पर उसकी कुल संपत्ति बेहद कम है। उन्होंने उर्दू को शायरी व उपदेश के काबिल ही माना पर बदले में जिन भाषाओं को ज्ञान-विज्ञान के काबिल माना वे थी- संस्कृत, बंगला, नागरी, अरबी, फारसी, अंग्रेज़ी।[9]

गौरतलब है की नागरी अपने आप में कोई भाषा नहीं बल्कि लिपि थी और आश्चर्य तो तब होता है जब वे यह मान लेते हैं कि अरबी-फारसी ज्ञान कि भाषा हो सकती है लेकिन उर्दू नहीं; जबकि उर्दू अक्सर अपने शब्द भंडार के लिए गाहे बगाहे फारसी के पास जाती थी। सवाल है कि उर्दू ज्ञान की भाषा क्यों नहीं हो सकती है? उर्दू को ज्ञान कि भाषा न मानने के पीछे दो तर्क हैं। पहला, यह कि यदि उर्दू को ज्ञान की भाषा मान लिया जाता तो उसका नुकसान हिन्दी को होता और दूसरा यह कि उर्दू का संबंध मुस्लिम समुदाय से था जिसे प्रतापनारायण मिश्र जैसे हिन्दू, हिन्दू धर्म से कमतर, हीन एवं पिछड़ा हुआ समझते थे।

१९वीं सदी में हिंदुस्तान को ज्ञानोदय की रोशनी एवं पहले-पहल आधुनिकता का परिचय हासिल हो रहा था। उस दौर में हिन्दी आंदोलन के माध्यम से भाषा वह हथियार बनी जिसका इस्तेमाल पूरे समुदाय के गोलबंदी एवं दबावकारी राजनीति के लिए चालू हो गया। भाषा का एक प्रमुख कार्य सामाजिक सम्बन्धों को बनाना एवं उन्हें पहचान देने का भी

होता है। लेकिन वहीं भाषा जब अलगावकारी राजनीति का माध्यम बनती है तब वह सामाजिक सम्बन्धों को खत्म भी करती है।[10] सैय्यद अहमद, भारतेन्दु, प्रतापनारायण मिश्र जैसे भद्र लोगों के साथ-साथ मौलवियों-पंडितों का वर्ग भी एक जैसी प्रतीत होने वाली हिन्दी-उर्दू की अलग-अलग विशेषताओं के दावे लेकर सामने आने लगे। इस संदर्भ में १८७६ ई॰ अवध के शिक्षा निदेशक जे॰ सी॰ नेसफील्ड ने लिखा मौलवियों पंडितों के बीच कि शत्रुता अजीबोगरीब थी। उन दोनों ने ही अपनी भाषा के शब्दों को लेकर ज़िद सी पकड़ ली जिसने निस्संदेह उर्दू और हिन्दी के बीच की दूरी को बढ़ाने का काम किया। उन्होंने यह झूठा प्रचार करने की भी कोशिश की कि उर्दू व हिन्दी दो अलग अलग ज़बानें हैं।[11]

'हिन्दी व उर्दू दो अलग अलग ज़बानें हैं' इस अलगाव को पहले-पहल चिन्हित करने व बढ़ाने का कार्य ब्रिटिश अधिकारियों के माध्यम से ही हुआ था। जाहिर है कि ब्रिटिश राज के अधिकारी खुद पाक-साफ नहीं थे। १८७० के दशक में जब अलगाव बढ़ा तो उन्होंने उसका सावधानी से निरीक्षण किया और धार्मिक दरारों को चौड़ा करने के लिए भाषाई प्रतिनिधियों की मांगों के प्रति हमदर्दी जताने की आड़ में हिन्दी-उर्दू टकराव को उकसाने का खेल भी खेला। यही नहीं १८८१ की जनगणना की आड़ में हिंदुओं को डराने की कोशिश की जाती थी कि उनकी आबादी घट रही है और मुस्लिमों की आबादी हिंदुस्तान में बढ़ रही है। इसी तरह उर्दू के असर को बरकरार रखने के लिए यह प्रचारित किया गया कि हिन्दू न केवल आबादी के स्तर पर पिछड़ रहे हैं बल्कि उनकी धार्मिक गुलामी जस कि तस बनी हुई है। इस तरह अफवाहों एवं फरेबी बातों के आधार पर अँग्रेजी शासक मुसलमानों को भी डराया करते थे कि वो हिंदुओं से पिछड़ रहे है। १९वीं सदी में पिछड़

जाने के खतरे से दोनों समुदायों को डराया जाता था और यह कार्य अंग्रेज़ी सरकार बहुत सावधानी से किया करती थी।

हिंदुस्तान में अंग्रेज़ी शासन से पहले मुसलमान केवल राजनीतिक शासक ही नहीं थे, बल्कि उनका भाषाई और सांस्कृतिक वर्चस्व भी था। अंग्रेज़ी शासन की स्थापना के साथ ही मुस्लिम समुदाय के राजनीतिक, आर्थिक, सामाजिक और भाषाई वर्चस्व पर भी हमला हुआ। उपनिवेशवादी शासन प्रणाली में हिंदुस्तान के राजनीतिक, आर्थिक समीकरण बदलने लगे। पुराना सामंती समाज और उसकी जमींदार वर्ग की चूलें कमजोर पड़ने लगीं। संयुक्त प्रांत में इस जमींदार वर्ग का अधिकतर प्रतिनिधित्व मुस्लिम समुदाय ही कर रहा था। नए औपनिवेशिक समाज में हिन्दू व्यापारी वर्ग का उभार हुआ जो मुस्लिम साम्राज्य में केवल सहयोगी की भूमिका में था। अंग्रेज़ी शासन की स्थापना और नए हिन्दू व्यापारी वर्ग के उभार के बीच मुस्लिम आभिजात्य वर्ग के समक्ष अपनी राजनीतिक हैसियत एवं श्रेष्ठता को बरकरार रखने का संकट पैदा हो गया।[12]

१८५७ के गदर के बाद हिन्दू-मुस्लिम समुदाय के बीच आपसी प्रतिस्पर्धा बढ़ने लगी। प्रतिस्पर्धा के दौर में अलगाववादी तत्वों को बढ़ने का भी मौका मिला। गदर के बाद की उथल-पुथल एवं अलगाववादी परिस्थितियों के बीच हिन्दी आंदोलन की शुरुआत भी होती है। १८५७ के दौर में संयुक्त प्रांत में नए किस्म का नेतृत्व उभर रहा था जिसकी जड़ें सामंती वर्ग में थीं। लेकिन यूरोपीय आधुनिकता के कारण कुछेक जगहों पर नयी शहरी संस्कृति भी विकसित हो रही थी।[13] इस तरह के संक्रमण के दौर में हिंदुस्तानी समाज नए नेतृत्व के गुर भी सीख रहा था। उनकी वफादारी अंग्रेज़ी सरकार के प्रति होती थी। यह स्थिति हिन्दू और मुस्लिम दोनों समुदायों में थी। राजा शिवप्रसाद, भारतेन्दु, सैय्यद अहमद इसी नए शहरी वर्ग का प्रतिनिधित्व कर रहे थे। लेकिन १८५७ की गदर के बाद उभरी नयी

परिस्थितियों और कई तरह के बदलावों के बीच भद्र वर्गीय मुसलमानों को अपना अस्तित्व खोने का डर पैदा हो गया। फ्रांसिस रॉबिंसन् के मुताबिक इन परिस्थितियों और बदलावों में आधुनिक शिक्षा प्रणाली, सरकारी नौकरियों के लिए शैक्षणिक योग्यताएँ ,प्रशासनिक सुधार, स्थानीय स्वशासन के तहत म्यूनिसिपालिटी और जिला बोर्डों में प्रतिनिधिमूलक चुनाव प्रणाली, हिन्दू पुनरुत्थानवादी आंदोलनों के साथ-साथ अदालतों में नागरी लागू करने की मुख्य मांग भी शामिल थी।[14] इन परिस्थितियों में हिन्दू वर्ग अपनी अतीत की चेतना के साथ तेज़ी से आगे आ रहा था। अपनी मांगों एवं हक़ को लेकर वे धार्मिक एवं राजनीतिक तौर पर निरंतर एकजुट हो रहे थे। लेकिन स्पष्ट राजनीतिक विचारों की कमी और पश्चिमोत्तर प्रांत में मुस्लिम आबादी के असमान वितरण के कारण मुसलमान 1857 की गदर के बाद एकजुट नहीं हो पा रहे थे। जैसे कि सैय्यद अहमद अपनी आधुनिकता के कारण देवबंद के लोगों को नहीं भाते थे तो सैय्यद की मत-भिन्नता बखरुद्दीन तैय्यब जैसे लोगों से भी थी, जो कॉंग्रेस का समर्थन कर रहे थे। परंतु इन सबके बावजूद सैय्यद अहमद का कद अपने रसूख और शासन में अपनी पहुँच के कारण अन्य मुस्लिम नेताओं से ज़्यादा था।

संयुक्त प्रांत में मुस्लिम समुदाय अल्पसंख्यक होने के बावजूद अधिकांश क्षेत्रों में लंबे समय तक शासन में रहा। फलतः उसकी नज़दीकियाँ अँग्रेजी सरकार से हिन्दू भद्र वर्ग की अपेक्षा ज़्यादा थी जिसका प्रभाव 19वीं सदी के अंत तक देखने को मिलता है। यह प्रभाव भाषाई सांस्कृतिक तौर पर भी था। हमेशा से सत्ता में रहने का आदी मुस्लिम समुदाय अग्रेज़ी शासन के दौर में अपने आभिजात्यपन को छोड़ नहीं पा रहा था। फलस्वरूप आभिजात्य एवं अल्पसंख्यक होने के नाते जनतांत्रिक सुधारों की बढ़ती कांग्रेसी मांगों में उन्हें अपना भविष्य अंधकारमय नज़र आने लगा। कॉंग्रेस में हिन्दू वर्ग का प्रतिनिधित्व भी ज़्यादा था। इस दौरान संकट से निकलने

का उपाय मुस्लिम वर्ग को यह सूझा कि राजनीतिक सुधार की मांगों का विरोध किया जाए। इसके लिए अँग्रेजी सरकार के समक्ष अपने पुराने गौरव और राजनीतिक हैसियत की दुहाई दी जाए। इसके बदले में सरकार को काँग्रेस के खिलाफ समर्थन दिया जाए।[15] जबकि मुस्लिम समाज का राजनीतिक-धार्मिक विरोध अंग्रेज़ी सरकार से ज़्यादा था। लेकिन मुस्लिम समाज के भद्रवर्गीय लोगों ने तुष्टीकरण की नीति के तहत ब्रिटिश सरकार के विरोध को दरकिनार कर उनसे दोस्ती एवं वफादारी निभाने में ही अपनी भलाई समझी। परिणामतः हुआ यह की 19वीं सदी में जो राजनीतिक और धार्मिक विरोध ब्रिटिश सत्ता से था वह हिन्दू समुदाय के खिलाफ हो गया। मुस्लिम समुदाय के हिन्दू विरोध के पीछे अल्पसंख्यक होने का डर एवं राजनीतिक धार्मिक पतन संबंधी चिंता थी। 18वीं सदी में मुस्लिम नवजागरण के संदर्भ में शाह वल्ली उल्लाह मानते थे कि मुस्लिम सत्ता के राजनीतिक पतन का कारण भारतीय मुसलमानों का धार्मिक एवं सांस्कृतिक पतन है। शाह वल्ली उल्लाह जैसे धार्मिक नेता जिनकी स्वीकार्यता पुरातनपंथी मुस्लिम समुदाय में ज़्यादा थी, ने मुस्लिम सत्ता को फिर से कायम करने के लिए मुस्लिम समुदाय को धार्मिक एवं सांस्कृतिक जीवन की शुद्धता पर ज़ोर देने के लिए कहा। इस शुद्धता से उनका अर्थ था हिंदुओं से मुस्लिम समुदाय का ज़्यादा से ज़्यादा अलगाव।[16]

हिन्दी-उर्दू के बीच भाषा संबंधी अलगाव का संबंध इस सामाजिक अलगाव संबंधी सोच से भी था। 19वीं सदी के अंतिम दशकों में भाषा भौतिक अस्मिता का प्रतीक बन चुकी थी। हिन्दू भद्र वर्ग एवं मुस्लिम भद्र वर्ग के बीच जो आपसी कटुता थी वह नौकरियों एवं स्थानीय शासन में भागीदारी को लेकर थी। उर्दू मुस्लिम समुदाय से ज़्यादा उनकी भौतिक अस्मिता का प्रतीक थी जिसका कारण था प्रांतीय राजभाषा के रूप में मिली उसकी स्वीकृति। हिन्दू-मुस्लिम समुदाय के बीच वर्चस्व की लड़ाई में भाषा

या लिपि का सवाल अपनी आर्थिक महत्ता के कारण हमेशा केन्द्रीय स्थिति में बना रहा। इस आर्थिक महत्ता ने उर्दू को मुसलमान समुदाय तथा हिन्दू कायस्थ एवं खत्री ब्राह्मण के लिए जीवन-मरण का प्रश्न बना दिया, वहीं हिन्दी और नागरी को हिन्दू समुदाय के लिए। 19वीं सदी के मध्य के बाद जो विचार लोगों के मनोमस्तिष्क में सबसे ज़्यादा घर कर रहा था, वह था राष्ट्रीय चेतना संबंधी बोध। 19वीं सदी में राष्ट्र की चेतना के उभार के पीछे पश्चिमी पूंजीवाद की वह विचार प्रणाली काम कर रही थी जिसमें व्यापार, पूंजी व प्रशासन जैसे भौतिक कारण थे। इस चेतना को लोगों के मानस में उतारने का कार्य हिन्दी आंदोलन की सामाजिक-सांस्कृतिक सुधारवादी संस्थाएँ कर रही थीं। हिन्दी आंदोलन राष्ट्रीय चेतना को उभारने में प्रतीकात्मक कार्य कर रहा था। इस संदर्भ में क्रिस्टोफर किंग ने अपनी किताब 'वन लैंगवेज़ टू स्क्रिप्ट' में बहुप्रतीक समायोजन का हवाला दिया है। 19वीं सदी में राष्ट्र की चेतना को उभारने के पीछे बहुप्रतीक समायोजन 'हिन्दी-हिन्दू-हिंदुस्तान' के प्रतीक के तहत कार्य कर रहा था। इस तरह के प्रतीकों के अंतर्गत हिंदुओं को आत्मचेतस एवं जागरूक समुदाय में ढलने के लिए कई प्रतीक एक साथ इस्तेमाल किए जा रहे थे। नागरी-हिन्दी आंदोलन भी उसी की एक कड़ी थी।[17]

हिन्दी आंदोलन जिस राष्ट्रीय अवधारणा का विकास कर रहा था वह एक धर्म, एक भाषा और एक राष्ट्र की अवधारणा थी। वह एक धर्म था हिन्दू, एक भाषा थी हिन्दी और एक राष्ट्र था हिंदुस्तान। 19वीं सदी में जितने नवजागरण के नेता हुए उनकी यही विचारधारा थी कि एक भाषा हो, एक राष्ट्र हो और एक धर्म हो तो हम बहुत शक्तिशाली हो जाएंगे। उन्हें लगता था कि यूरोप इसीलिए शक्तिशाली है और इसीलिए वह हिंदुस्तान को गुलाम बना सका क्योंकि उसकी एक भाषा है, एक धर्म है, एक राष्ट्र है। आर्य समाज सबसे प्रतिनिधि संगठन था इस तरह के राष्ट्रवादी सोच का।

लेकिन उसके जो विरोधी थे ब्रह्म समाज और सनातनी वे भी इससे सहमत थे।[18] यह और बात है कि ब्रह्म समाज ,सनातनी, और आर्य समाज सबके धर्म और राष्ट्र संबंधी मत अलग-अलग थे लेकिन सब हिन्दू थे। आर्य समाजी सोचते थे कि वैदिक धर्म राष्ट्र धर्म होना चाहिए और ब्रह्म समाजी ब्रह्म समाज को राष्ट्र धर्म के रूप में देखते थे। इस तरह की धार्मिक भिन्नता होने के बावजूद विचारधारा एक थी हिन्दू धर्म की राष्ट्रवादी चेतना की स्थापना करना एवं उसका प्रचार-प्रसार करना। यही नहीं भारतेन्दु हरिश्चंद्र भी इसी हिन्दू धर्म की राष्ट्रवादी चेतना को प्रसारित करते हुए कहते हैं, जो हिंदुस्तान में रहें, चाहे किसी रंग, किसी जाति का क्यों न हो, वह हिन्दू है। वे आगे कहते हैं कि सब लोग मिलकर हिन्दू की सहयता करो।[19]

जाहिर है कि भारत जिस तरह बहुभाषी विविधता का देश है उसी तरह विभिन्न समुदायों और धर्मों का भी देश है। विविधता के साथ जीवन निर्वाह की जो विचार-प्रणाली हिंदुस्तान में मौजूद रही उसको ही परे धकेलने का कार्य 19वीं सदी में राष्ट्रवादी चेतना कर रही थी। केवल बहुसंख्यक जनता का आधार ही यह तय करने लगा कि हिंदुस्तान का धर्म और भाषा किस तरह की या कौन सी होगी। इस स्थिति में अल्पसंख्यक समुदाय के अंदर भय का पैदा होना स्वाभाविक ही है। यहाँ ध्यान रखने योग्य है कि हिन्दू समाज में सुधार की प्रवृत्ति एवं पुनरुत्थानवादी चेतना के जरिये 'हिन्दी-हिन्दू-हिंदुस्तान' की राष्ट्रीय चेतना का निर्माण किया जा रहा था। हिन्दू राष्ट्रवादी चेतना के निर्माण में राजा राममोहन राय से लेकर भारतेन्दु और मदन मोहन मालवीय तक सब एक ही चेतना के साथ कार्य कर रहे थे। इन सबकी राष्ट्रवादी चेतना में दूसरे धर्म के लिए कोई जगह नहीं थी और अगर थी भी तो हिन्दू धर्म के पिछलग्गू के रूप में ही। 19वीं सदी से पहले हिन्दू जैसी कोई समूहिक जातीय अवधारणा नहीं थी। 18वीं सदी में हिन्दू जैसी जातीय या धार्मिक पहचान की अपेक्षा जाति आधारित पहचान ही अधिक

थी जैसे राजपूत, ब्राह्मण कायस्थ आदि का खुले तौर पर प्रयोग किया जाता था।[20] 19वीं सदी के मध्य के बाद से हिन्दू समुदाय की जो धार्मिक पहचान बनती है वह धार्मिक पहचान की अपेक्षा राजनीति निर्मित ही प्रतीत होती है। इस हिन्दू पहचान से जुड़ने वाली जातियों में अधिकतर हिन्दू समुदाय की उच्च जातियाँ ही थीं और यही उच्च जाति के लोग सुधारवादी कार्यों एवं हिन्दी आंदोलन के कर्ता-धर्ता भी थे।

19वीं सदी में जिस तरह हिन्दू भद्र वर्ग के भीतर कुछ लोग (अधिकतर कायस्थ) उर्दू के नाम पर बंटे हुए थे उसी तरह हिन्दी के भीतर की दुनिया भी बँटी हुई थी। राजा शिवप्रसाद जैसे लोग 'हिन्दी के स्वतंत्र प्रगति' के समर्थक थे और हिन्दी से अरबी, फारसी शब्दों को हटाने का विरोध करते थे। वही हिन्दी आंदोलनकरियों में कुछ लोग इस तर्क पर बल देते थे कि उर्दू के कारण हिन्दी के अक्षर बिगड़ रहे हैं। उनके उच्चारण में कई गड़बड़ियाँ आ रहीं हैं। 19वीं सदी में यह झूठ बार-बार फैलाया जाता था कि हिन्दी को फारसी अक्षर में लिखने पर वह उर्दू हो जाती है। साथ ही एक झूठ और दुहराया जाता था कि उर्दू के कारण हिन्दी न केवल उपेक्षित हो रही है बल्कि उसका स्वरूप भी बिगड़ रहा है। जैसे प्रतापनारायण मिश्र ने लिखा, उर्दू वाले हमारे मंत्र और ब्राह्मण आदि शब्दों को मंतर और बरहमन कहने से नहीं शर्माते।[21] इस तरह उर्दू छुआछूत से हिन्दी को बचाने का उपक्रम भी हिन्दी आंदोलन में खूब चल रहा था, जिसने हिन्दी-उर्दू के अलगाव के पाट को और चौड़ा ही किया। राजा लक्ष्मण सिंह भी ऐसे ही लोगों में थे जिनका मानना था कि हिन्दी और उर्दू दो भिन्न भाषाएँ हैं और हिन्दी हिंदुओं द्वारा बोली जाती है और उर्दू मुसलमानों द्वारा।[22]

हिंदी आंदोलन के दौरान न सिर्फ हिन्दी को फारसी मिश्रित पुरानी परंपरा से अलग किया गया वरन उसे और संस्कृतनिष्ठ बनाने का प्रयास किया जाने लगा। इसका नतीजा यह हुआ कि हिन्दी-उर्दू खुलकर एक-दूसरे

के विरुद्ध आ गईं। इस संदर्भ में बालमुकुन्द गुप्त का यह कथन उल्लेखनीय है जिसमें उर्दू को मुस्लिम समुदाय से जोड़ते हुए उन्होंने लिखा- मुसलमानों को यह जानना चाहिए कि जिस भाषा को वे उर्दू कह रहे हैं वह हिन्दी से अलग नहीं है। उर्दू के आदि कवियों ने उस भाषा को हिंदवी कहकर पुकारा है। हिन्दी को आपलोग ज़बरदस्ती फारसी अक्षरों में लिखने लगे थे, जिनमें वह ठीक लिखी भी नहीं जा सकती थी। इसी के शुद्ध हिन्दी शब्दों को आप लोगों ने अपने अक्षरों के अनुसार तोड़-फोड़ डाला है। प्रसाद को परसाद बनाया, समुद्र को समंदर बनाया, हरिद्वार को हरदवार, वृन्दावन को वंदरावन बनाया। हिन्दी के हजारों प्रचलित शुद्ध-शुद्ध शब्द आप लोगों के इन फारसी अक्षरों के कारण भ्रष्ट हो गए।[23]

यहाँ बालमुकुंद गुप्त हिन्दी के संदर्भ में जिस तरह के उच्चारण भेद को सामने रखते हैं वह अस्वाभाविक नहीं है। बल्कि हिन्दी कि बोलियों (भोजपुरी, अवधी आदि) में ही यह भेद मौजूद है। हिन्दी में ही संस्कृत एवं खड़ी बोली के शब्द अलग-अलग उच्चारण के साथ बोले जाते हैं।[24] उर्दू-हिन्दी के संदर्भ में 19वीं सदी के हिन्दी आंदोलनकर्ताओं का यही अंतर्भेद है तब हिन्दी का आज अपनी बोलियों के साथ जो संबंध है उसके बारे में नए ढंग से सोचने की ज़रूरत पड़ जाएगी। लेकिन 19वीं सदी में हिन्दू-मुस्लिम समुदाय के बीच इस तरह के भाषाई अंतर्भेद सामाजिक सांस्कृतिक अलगाव को मजबूत करने का आधार बने।

हिन्दी आंदोलन के दौरान उर्दू के खिलाफ एक तर्क और दिया जाता था कि उर्दू और फारसी सरकारी भाषा होने के कारण प्राथमिक एवं द्वितीय शिक्षा के स्तर पर लोग नागरी में शिक्षा प्राप्त करने के प्रति उदासीन रहते थे। हिन्दी आंदोलनकारियों द्वारा यह बात आम लोगों के बीच फैलायी जाती थी कि कोर्ट-कचहरियों में नौकरियाँ नागरी नहीं बल्कि फारसी लिपि सीखने से ही मिलेगी। इस तरह कि बातों के फैलने का कारण था समाज का

पिछड़ापन। इस पिछड़ेपन की वजह से यह हुआ कि एक समस्या को हल करने के चक्कर में दूसरी समस्या ने जन्म ले लिया। यह पिछड़ापन केवल हिन्दू समुदाय में ही नहीं था बल्कि मुस्लिम समुदाय में भी था।

हिन्दी आंदोलन का एक भिन्न और स्पष्ट पक्ष 19वीं सदी की साहित्यिक पत्र-पत्रिकाओं एवं हिन्दी आंदोलन में अपनी भागीदारी निभा रहे संगठनों से खुलता है। इस तरह के संगठनों में एक प्रमुख नाम आर्य समाज का था। आर्य समाज (1875) 19वीं सदी के उत्तरार्ध में शुरू होने वाला एक सामाजिक आंदोलन था; जिसमें पुनरुत्थानवादी एवं सुधारवादी दोनों तत्व मौजूद थे। आर्य समाज के प्रवर्तक दयानन्द सरस्वती ने हिन्दी को एक नया नाम दिया –'आर्य भाषा' तथा उसे समस्त हिंदुओं की भाषा बतलाया। दयानन्द सरस्वती ने आर्य भाषा को हिंदुस्तानी की विरासत से अलग करते हुए उसे सीधे संस्कृत से जोड़ दिया। यह इतिहास को अपने ढंग से निर्मित करने एवं गढ़ने का प्रयास था। यहाँ मज़ेदार बात है कि अपनी आर्य भाषा का प्रचार-प्रसार करने के लिए आर्य समाज को उर्दू का ही सहारा लेना पड़ता था। पंजाब में आर्य गज़ट तथा उत्तर प्रदेश में आर्य पत्रिका और आर्य समाचार उर्दू के ही अखबार थे जिनके जरिये आर्य भाषा का प्रचार-प्रसार होता था।

कुछ इसी तरह का प्रयास अलीगढ़ आंदोलन द्वारा उर्दू के पक्ष में किया जा रहा था। अलीगढ़ आंदोलन ने उर्दू भाषा का प्रचार-प्रसार सभी भारतीय मुसलमानों एवं सिर्फ मुसलमानों की भाषा के रूप में किया। 19वीं सदी के प्रारम्भ में उर्दू को मुस्लिम अस्मिता का जामा पहनाना आसान काम नहीं था। 19वीं सदी के प्रारम्भ में उर्दू की छवि शासन की भाषा एवं फिर दिल्ली के साहित्यिक वर्ग की अदबी भाषा के रूप में प्रचलित थी। अलीगढ़ आंदोलन ने 19वीं सदी में उर्दू को क्षेत्रीय स्तर पर फैलाने एवं धार्मिक दृष्टि से संकुचित करने का काम किया। उर्दू को इस्लामी जामा पहनाने में इस

बात से भी मदद मिली कि 19वीं शताब्दी में राजनीतिक शक्ति के रूप में मुस्लिम शासकों के पतन से संबंधित साहित्य उर्दू भाषा में ही लिखा जा रहा था। तत्कालीन ब्रिटिश शासकों, आर्य समाज और अलीगढ़ आंदोलन की हरसंभव कोशिश रही कि उर्दू मुसलमानों की एवं हिन्दी हिंदुओं की भाषा बन जाए। फलस्वरूप हुआ यह कि 19वीं सदी के उत्तरार्ध में दोनों भाषाओं को अलग-अलग धार्मिक पहचान तो अवश्य मिल गयी लेकिन दोनों समुदायों के बीच भाषाई अस्मिता के कारण एक-दूसरे के खिलाफ मुट्ठियाँ भी तन गईं। इसका परिणाम यह हुआ कि 19वीं सदी के अंतिम दो दशकों में जिस सांप्रदायिक राजनीति का उदय हुआ उसमें जमकर भाषाई अस्मिता का प्रयोग हुआ।

क्रिस्टोफर किंग ने हिन्दी-उर्दू आंदोलन के संदर्भ में चार प्रमुख नाट्य रचनाओं का उल्लेख किया, जिससे पता चलता है कि साहित्यिक विधाओं का भी उपयोग भाषा-लिपि की लड़ाई में किया जा रहा था। उन्होंने पंडित गौरीदत्त द्वारा रचित 'किश्ती कश्बी नाटक' व 'नागरी और उर्दू का स्वांग', बाबू रत्नचन्द्र के 'हिन्दी उर्दू का नाटक' और सोहन प्रसाद द्वारा अवधी-खड़ी बोली मिलाकर रची गयी लंबी कविता 'हिन्दी और उर्दू की लड़ाई' का उल्लेख किया है, जिसमें उर्दू के बारे में कई आरोप लगाए गए। सभी में कमोबेश उर्दू को खलनायक, बुरे चरित्र वाली स्त्री व बिगड़ी हुई भाषा के रूप में प्रस्तुत किया गया।[25] इससे पहले भारतेन्दु 1874 में नागरी के पक्ष में मेमोरेंडम देने के बाद हरिश्चंद्र चंद्रिका में 'उर्दू का स्यापा' नामक रचना लिख चुके थे, जिसमें उर्दू का उपहास उड़ाते हुए उन्होंने लिखा कि अलीगढ़ इंस्टीट्यूट और बनारस अखबार देखने से ज्ञात हुआ कि बीबी उर्दू मर गयी और परम अहिंसानिष्ठ होकर भी राजा शिवप्रसाद ने यह हिंसा की। हाय-हाय बड़ा अंधेर हुआ मानो बीबी उर्दू अपने पति के साथ सती हो गयी। यद्यपि हम देखते हैं कि अभी साढ़े तीन हाथ की ऊँटनी सी बीबी उर्दू पागुर करती हुई जीती है।[26]

19वीं सदी के उत्तरार्ध में पत्र-पत्रिकाओं तथा अखबार के माध्यम से केवल हिन्दी के पक्ष में ही नहीं लिखा जा रहा था बल्कि 'अल बशीर' और 'पंजाब ऑबज़र्वर' जैसे अखबार उर्दू के पक्ष में भी लिख रहे थे। लेकिन उर्दू के पक्ष में जो लिखा जा रहा था उसपर अधिकतर अलीगढ़ आंदोलन और मुस्लिम भद्र वर्ग की अलगाववादी चेतना का प्रभाव था। अल बशीर और पंजाब ऑबज़र्वर जैसे अखबार नागरी अक्षरों को बेढंगा , ग्रामीण भाषा का रूप एवं नागरी के प्रचार को मुसलमानों के विरोध में बताते थे। 1900 ई॰ में उर्दू के संदर्भ में उर्दू समर्थकों द्वारा नागरी से अधिक उन्नत एवं आम जनता में स्वीकार्यता होने के पक्ष को लेकर ढेरों तर्क दिये गए। ऐसे ही दौर में मुस्लिम भद्र वर्ग का काँग्रेस के खिलाफ ध्रुवीकरण भी हो रहा था जो हिन्दी आंदोलन के दौरान हिन्दी-उर्दू विवाद में खुलकर सामने आया।

अप्रैल 1900 ई॰ में पश्चिमोत्तर प्रांत एवं अवध कोर्ट तथा सरकारी कामकाज में नागरी के इस्तेमाल की अनुमति मिलने के बाद 18 जून 1900 को उर्दू के मुख्य साहित्यिक पत्र 'अल बशीर' ने काँग्रेस एवं हिंदुओं के खिलाफ अंग्रेज़ों को सावधान रहने की नसीहत देते हुए कहा, हिन्दी-उर्दू विवाद', 'गोरक्षा संगठन' और सरकारी नौकरियों के लिए प्रतियोगिताएं आयोजित करने की प्रणाली मुस्लिमों के पूरी तरह खिलाफ है, पर वह वास्तव में राष्ट्रीय काँग्रेस से संबंधित है। ये चीज़ें देश में ऐसी भावनाओं को अप्रत्यक्ष रूप से जगा रही हैं जो हो सकता है ब्रिटिश राज के लिए लाभकारी न हो।[27]

19वीं सदी के अंतिम दो दशकों में एक ओर हिन्दी आंदोलन नागरी की मांग को लेकर हिंदुओं को कट्टर धार्मिक समुदाय में बदलने का काम कर रहा था तो दूसरी ओर उर्दू रक्षा के नाम पर मुस्लिम समुदाय का ध्रुवीकरण हिंदुओं के खिलाफ हो रहा था। इसके साथ-साथ 19वीं सदी में मुस्लिम समुदाय के एक बड़े वर्ग में लोकतन्त्र विरोधी सोच विकसित हो रही थी

जिसके कारण अधिकांश मुस्लिम लोकतान्त्रिक राजनीति में भागीदारी नहीं कर पा रहे थे। इसी तरह की अलगाववादी प्रवृत्तियों ने हिन्दी आंदोलन के दौरान इस अफवाह को भी बल दिया कि मुस्लिम सांप्रदायिकता देश के लिए खतरा है परंतु हिन्दू सांप्रदायिकता देश हित, देश संगठन के लिए बेहद ज़रूरी है। जैसा कि हिन्दी प्रदीप पत्रिका के जून 1881 के अंक में बालकृष्ण भट्ट अपने धर्म संबंधी चिंतन में लिखते हैं, आर्यों के एकांत विरोधी मुसलमानों को अपना भाई समझना भूल है।[28] यही नहीं वृन्दावन से प्रकाशित होने वाले पत्र 'ब्रिजभाषी' में यहाँ तक कहा गया कि कोई हिन्दू फारसी लिपि का इस्तेमाल करता है तो वह हिन्दू कहलाने के योग्य नहीं है।[29]

19वीं सदी के हिन्दी आंदोलन के संदर्भ में यह स्पष्ट है कि केवल उर्दू में पनपी अलगाववादी चेतना के कारण हिन्दी के लोग हिन्दी की सेवा करने लगे तो यह अलगाववाद को बढ़ावा देने का ही काम हुआ। किसी भाषा या क्षेत्र में अलगाववाद की भावना पैदा होती है तो उसके खिलाफ अपना अलगाववाद खड़ा कर लेना आग में घी डालने वाली बात होगी जैसा कि हिन्दी आंदोलन के दौरान खूब हुआ। 19वीं सदी में हिन्दी आंदोलन के नाम पर जिस तरह की अलगाववादी चेतना पैदा हो रही थी वह धार्मिक रंग से रंगी सांप्रदायिक चेतना थी जिसकी जड़ में एक दूसरे से अलगाने का भाव मौजूद था। यह अकारण या संयोगवश नहीं था कि हिन्दी आंदोलन में नागरी की लड़ाई लड़ने वाले अधिकतर संगठन धार्मिक ही थे। चाहे वह आर्य समाज हो, श्री भारत धर्म महामंडल (1887) या प्रतिनिधि मध्य भारत सभा। ये सभी संगठन धार्मिक-सुधारवादी चेतना के जरिये ही हिन्दी आंदोलन की लड़ाई लड़ रहे थे। सन् 1882 में हंटर कमीशन के समक्ष हिन्दी भाषा और नागरी लिपि के समर्थन में मेमोरेंडम देने में धार्मिक संगठन ही सबसे आगे थे।

TH22984

19वीं सदी के अंतिम दो दशकों में जब हिन्दी आंदोलन अपने चरम पर था तब भाषा या लिपि के सवाल के जरिये जिस ऐतिहासिक चेतना का विकास हो रहा था वह धर्म आधारित थी। अगर केवल उर्दू के जवाब में हिन्दी आंदोलन की लड़ाई लड़ी जाती तो उसे बार बार हिंदुओं से नहीं जोड़ा जाता और न ही उसे हिंदुओं के जातीय स्वाभिमान का प्रश्न बनाया गया होता। डॉ॰ रामविलास शर्मा सामान्य भाषा, सामान्य क्षेत्र, सामान्य आर्थिक जीवन और सामान्य संस्कृति को जातीय निर्माण चेतना का वस्तुगत आधार मानकर हिन्दी आंदोलन की ऐतिहासिकता को रेखांकित करते हैं। वह उन्हें 19वीं सदी के दौरान विकसित हो रही राष्ट्रवादी चेतना के नजदीक ले जाती है। हिन्दी आंदोलन और उसके ऐतिहासिक महत्व को लेकर रामविलास शर्मा लिखते हैं, हिंदुस्तानी जाति के गठन और उसके सांस्कृतिक विकास के लिए 19वीं सदी का हिन्दी आंदोलन ऐतिहासिक आवश्यकता थी।[30]

यहाँ रामविलास शर्मा हिंदुस्तानी जाति के गठन और उसके सांस्कृतिक विकास के लिए जिस ऐतिहासिक विचार प्रणाली का प्रयोग कर रहे हैं, वह है हिंदुस्तान की साझी संस्कृति जिसका सबसे अधिक नुकसान हिन्दी आंदोलन के दौरान हुआ। 19वीं सदी में हिन्दी आंदोलन के भीतर ही धार्मिक प्रतीकों के आधार पर हुए ध्रुवीकरण से हिन्दू-मुस्लिम समुदाय के बीच प्रतिस्पर्धी संकीर्णताएं विकसित हो रही थीं, जिसने गंगा-जमुनी तहज़ीब को तार-तार कर दिया। हिन्दी आंदोलन के इस प्रभाव को रामविलास शर्मा अपने ऐतिहासिक चिंतन में अनदेखा कर देते हैं। इस संदर्भ में रामविलास शर्मा का यह कथन उद्धृत करना उचित होगा जिसमें वह कहते हैं कि अंग्रेज़ कूटनीतिज्ञों ने यहाँ के एकता के तत्वों को दबाने की भरसक कोशिश की और अलगाव के तत्वों को भरसक बढ़ावा दिया। जिन हिंदुओं और मुसलमानों ने मध्यकालीन धर्म की खाई को पार कर लिया था और हर प्रदेश में संयुक्त जातीयता का विकास किया था, वे शब्दावली और लिपि के

भेद को अवश्य दूर कर लेते और एक शक्तिशाली राष्ट्र का निर्माण करते। लेकिन अंग्रेज़ों ने इन संभावनाओं को खत्म कर दिया। उन्होंने हिन्दी-उर्दू की शैलियों को जतियों की भाषा का रूप दे दिया और भाषा को जातीय उत्पीड़न का साधन बनाया। इसीलिए यह बात मुश्किल से कुछ लोगों को समझ में आती है कि अंग्रेज़ी राज से पहले हिंदुस्तान के हिन्दू और मुसलमान एक जाति के थे और वे आज भी एक ही जाति के हैं। धर्म के आधार पर न कहीं भाषाओं में भेद हुआ है न कहीं जातियाँ बनी हैं।[31]

निस्संदेह यह बहुत हद तक सच है कि अंग्रेज़ी शासकों ने भाषाई अलगाव को जन्म दिया लेकिन हिन्दी आंदोलन के दौरान हुए भाषाई संघर्ष एवं उससे निकले हिन्दू-मुस्लिम वैमनस्य को एकदम से औपनिवेशिक कंधों पर डाल देना एक आलोचकीय चालाकी ही है और कुछ नहीं। स्पष्ट है कि रामविलास शर्मा साझी संस्कृति को आदर्श स्थिति के रूप में देखते हैं लेकिन उसी संस्कृति में हिन्दू-मुस्लिम समुदाय के बीच आपसी हितों का टकराव होता है जिसमें भाषा बहुसंगत प्रतीकों का माध्यम बन महत्वपूर्ण भूमिका निभाती है। 19वीं सदी में भाषाई अस्मिता के माध्यम से ही हिन्दू-मुस्लिम समुदाय अपने-अपने हितों की रक्षा करने लगता है जिसने साझी संस्कृति के ऐतिहासिक गठन को ही प्रभावित किया। 19वीं सदी में ही राष्ट्रवादी चेतना का तेज़ी के साथ विकास हो रहा था जिसमें हिन्दू-मुसलमान समुदाय को अपने-अपने कार्यों व हितों की चिंता हावी हो रही थी। साथ ही राष्ट्र निर्माण की चेतना को मजहबी रंग से रंगने की कोशिश भी की जा रही थी। इसी तरह की मजहबी सांप्रदायिक चेतना के तहत हिन्दी आंदोलन के साथ 19वीं सदी के अंतिम दशकों में गोरक्षा का मुद्दा भी जुड़ जाता है। गोरक्षा का मुद्दा दोनों समुदायों में पनप रहे धार्मिक टकराव में प्राणवायु की तरह कार्य करने लगा। हिन्दू धर्म में गाय के साथ सदियों पुरानी आस्था एवं धर्म का मसला जुड़ा था। हिन्दी आंदोलन के कार्यकर्ता 'गाय' या

'गोरक्षा' जैसे मुद्दे के साथ अंतिम जन तक पहुँचने लगे। 19वीं सदी के अंतिम दो दशकों में 'गोरक्षा' या 'गोहत्या' जैसे सवालों को काफी तूल दिया गया। सामान्य हिन्दू जनमानस के भीतर इस बात को प्रचारित-प्रसारित किया जाने लगा कि मुसलमान न केवल हिन्दी विरोधी हैं बल्कि गाय विरोधी भी हैं। हिन्दी आंदोलन के दौरान 'गोरक्षा' का मुद्दा इतना महत्वपूर्ण हो गया कि 1881 ई॰ में भारतेन्दु को 'गोमहिमा' लिखनी पड़ी। इस रचना का विज्ञापन देते हुए हिन्दी प्रदीप के सितंबर 1881 के अंक में बालकृष्ण भट्ट ने लिखा, यद्यपि अंगरेज लोग भी गोभक्षक हैं किन्तु प्रथम तो मुसलमानों कि संख्या की अपेक्षा इनकी संख्या ही अति अल्प है। दूसरे इनका बहुत सा मांस विदेश से आता है। तीसरे इनके अर्थ जो हत्या होती है वह प्रकाश रूप से नहीं आती। केवल मुसलमानों की हत्या ऐसी है जिससे सतत हम लोगों को दुख होता है।[32]

स्पष्ट है की गोरक्षा जैसे संवेदनशील मुद्दे के माध्यम से हिन्दी आंदोलनकर्ताओं ने हिन्दू जनमानस के सामने इस भ्रमित धारणा को निर्मित कर दिया कि गो-हत्या का कारण मुसलमान और उनका दीन-धर्म है जिसमें गाय का मांस खाने की छूट है।

19वीं सदी के हिन्दी आंदोलन की जिस मिली-जुली साझी संस्कृति को सरलीकृत कर रामविलास शर्मा अपना ऐतिहासिक निष्कर्ष निर्मित करते हैं, वह 19वीं सदी में कभी इतनी ठोस या मजबूत स्थिति में नहीं रहा जिसपर कोई साझी संस्कृति विकसित हो पाती। 19वीं सदी में साझी संस्कृति के ऊपर जो खतरे थे वे इसलिए नहीं थे कि सामान्य जन का अनुभव इस संस्कृति के खिलाफ था बल्कि इसलिए थे कि हिन्दी आंदोलन के दौर में दोनों समुदायों का एक-दूसरे के खिलाफ ध्रुवीकरण हो रहा था। इस स्थिति में हिन्दू-मुस्लिम एक-दूसरे के खिलाफ बल आज़मा रहे थे और शासक वर्ग स्वार्थ का मौका देखकर अपना उल्लू सीधा करता रहा। 19वीं सदी के अंतिम

दो दशकों में दंगे, हिंसा, अलगाव की सांप्रदायिक चेतना पैदा हुई। धार्मिक अस्मिता का चुनाव कभी परिस्थितिवश किया जाने लगा तो कभी स्वेच्छा-पूर्वक। 19वीं सदी में पश्चिमोत्तर प्रांत में कोई जातीय चेतना विकसित होने के बजाए धर्म, राष्ट्र के आधार पर एक-दूसरे के प्रति घृणा, नफरत की चेतना विकसित होने लगी। हिन्दी आंदोलन के दौरान धर्म का इस्तेमाल केवल पूजा-पाठ, नमाज़ तक नहीं रहा बल्कि उसका बेहद कुटिलतापूर्ण इस्तेमाल हुआ जिसने हिन्दी-उर्दू को एक ही हिंदुस्तानी ज़बान में ढलने के बजाए एक-दूसरे की विरोधी भाषा बना दिया।

संदर्भ सूची

1. Hindi Nationalism, आलोक राय, Orient Longman वर्ष-2000,दिल्ली, पृ.संख्या-22
2. वही, पृ.संख्या-13
3. वही,पृ. संख्या-23
4. हिन्दी साहित्य का इतिहास, रामचंद्रा शुक्ल, नागरीप्रचारिणी सभा काशी, वर्ष-1929 ,22वां संस्करण, पृ. संख्या-281
5. One language two scripts, Cristopher R King, Oxford University Press,वर्ष-1994,पृ.संख्या-62
6. वही पृ. संख्या-64
7. हिन्दी-उर्दू-हिंदुस्तानी, अँग्रेजी राज और सांप्रदायिकता ,कृपाशंकर सिंह, पृ. संख्या-84
8. वही पृ. संख्या-84
9. प्रतापनारायण मिश्र ग्रंथावली, संपादक-विजयशंकर मल्ल, नागरिप्रचारिणी सभा,वर्ष-1992,काशी, पृ.संख्या-440
10. हिन्दू-उर्दू साझा संस्कृति,संपादक-मुरली मनोहर प्रसाद सिंह,19वीं सदी में लिपि और राजभाषा का प्रश्न-वैभव सिंह, वर्ष-2009,पृ.संख्या-74
11. Hindi Nationalism,आलोक राय पृ. संख्या-30
12. रस्साकशी ,वीर भारत तलवार,सारांश प्रकाशन, वर्ष-2000,दिल्ली, पृ. संख्या-255
13. वही,पृ. संख्या-257

14.वही, पृ.संख्या-253

15.वही,पृ. संख्या-251

16.वही, पृ. संख्या-253

17. One language two script, Cristopher R King,पृ. संख्या-3

18.इस्पातिका पत्रिका, वीर भारत तलवार, Debateonline blog से साभार

19.भारतेन्दु का बलिया व्याख्यान, सामाजिक क्रांति के दस्तावेज़ भाग-1 संपादक-शंभुनाथ, पृ. संख्या-394,

20.रस्साकशी, वीर भारत तलवार, पृ. संख्या-281

21.प्रतापनारायन मिश्र ग्रंथावली,संपादक-विजयशंकर मल्ल, पृ. संख्या-440

22.हिन्दी साहित्य का इतिहास, रामचंद्रा शुक्ल, पृ. संख्या-301

23.बालमुकुंद गुप्त ग्रंथावली, संपादक-नत्थन सिंह, हरियाणा साहित्य अकादमी, चंडीगढ़ ,वर्ष-1993, पृ. संख्या-7

24 हिन्दी-उर्दू साझा संस्कृति,संपादक-मुरली मनोहर प्रसाद सिंह, पृ. स्ंख्या -73,

25.One language two scripts, Cristopher R. King, पृ. संख्या-136

26.भारतेन्दु हरिश्चंद्र ग्रंथावली,हिन्दी प्रचारक संस्थान, वाराणसी वर्ष-1989,पृ. संख्या-209

27.One language two scripts, Cristopher R King, पृ. संख्या-37

28.बालकृष्ण भट्ट, हिन्दी प्रदीप अंक वर्ष-1884, नेशनल लाइब्रेरी कोलकाता

29.हिन्दी-उर्दू साझा संस्कृति, संपादक-मुरलीमनोहर प्रसाद सिंह, पृ. संख्या-79

30.रस्साकशी, वीर भारत तलवार, पृ. संख्या-251

31.भाषा और समाज, रमविलास शर्मा, राजकमल प्रकाशन, दिल्ली, पुनःमुद्रण-2011, पृ. संख्या-309

32.रस्साकशी, वीर भारत तलवार, पृ. संख्या-297

दूसरा अध्याय

हिन्दी आंदोलन संबंधित कविताओं का आलोचनात्मक मूल्यांकन

दूसरा अध्याय

हिन्दी आंदोलन संबंधित कविताओं का आलोचनात्मक मूल्यांकन

रामविलास शर्मा ने हिंदी आंदोलन के संदर्भ में भारतेन्दु हरिश्चंद्र के योगदान को रेखांकित करते हुये लिखा है कि "भारतेन्दु हरिश्चंद्र ने साहित्यिक हिन्दी को सँवारा, साहित्य के साथ हिन्दी के नए आंदोलन को जन्म दिया ,हिन्दी साहित्य में राष्ट्रीय एवं जनवादी तत्वों को प्रतिष्ठित किया उससे पहले साहित्यिक क्षेत्र में खड़ी बोली के उस रूप का व्यापक व्यवहार कम होता था जिसे हम हिन्दी कहते थे"।[1] उद्धरण से स्पष्ट है कि डॉ॰ रामविलास शर्मा हिन्दी आंदोलन में भारतेन्दु हरिश्चंद्र की भूमिका को निर्णायक प्रतिनिधि के तौर पर देख रहे हैं। डॉ॰ शर्मा के इस कथन में अनेक प्रश्न हैं जिनके उत्तरों की तलाश के बगैर हिन्दी आंदोलन को तथा भारतेन्दु की हिन्दी आंदोलन संबंधी निर्णायक भूमिका को भली-भांति नहीं समझा जा सकता। डॉ॰ शर्मा के अनुसार भारतेन्दु ने 'साहित्यिक हिन्दी' को प्रतिष्ठित किया। अतः पहला प्रश्न तो यही है कि क्या भारतेन्दु की साहित्यिक हिन्दी एवं डॉ॰ शर्मा की साहित्यिक हिन्दी की अवधारणा एक ही है ? दूसरा प्रश्न यह है कि भारतेन्दु ने हिन्दी आंदोलन के दौरान जो 'निर्णायक भूमिका' निभाई उस भूमिका का बुनियादी चरित्र कैसा था और उसने हिन्दी आंदोलन को कैसे एवं कहाँ तक प्रभावित किया? तीसरा प्रश्न यह है कि डॉ॰ शर्मा भारतेन्दु से पूर्व जिस 'खड़ी बोली' के रूप के अप्रचलित होने की बात कह रहे हैं वह रूप कौन सा है ? इन प्रश्नों पर विचार करना इसलिए आवश्यक है क्योंकि उन्नीसवीं शताब्दी के अंतिम तीन दशकों (१८७०-१९००) में हिन्दी आंदोलन के अगुवा भी इन सवालों को अपने-अपने ढंग से उठाते रहे।

सन् १८७३ में भारतेन्दु ने नोट किया 'हिन्दी नयी चल में ढली'। यहाँ यह प्रश्न उठ सकता है कि हिन्दी की यह नयी चाल कौन सी है? क्या डॉ॰ शर्मा जिस 'साहित्यिक हिन्दी' की ओर संकेत कर रहे हैं वही हिन्दी की नई चाल है? भारतेन्दु हिन्दी की किस नई चाल की ओर संकेत कर रहे थे? इस सवाल को यदि हल करना है तो बात को इस ढंग से भी सोचा जा सकता है कि हिन्दी की पुरानी चाल कौन सी थी? भारतेन्दु के समय तक और भारतेन्दु के काल में भी हिन्दी के दो रूप अधिक प्रचलित रहे हैं जिन्हें हिन्दी की पुरानी चाल कहा जा सकता है। एक रूप हिन्दी का वह रूप है जिसमें हिन्दी के अधिकांश मध्यकालीन कवियों ने रचनाकर्म किया यानि ब्रज एवं अवधी तथा हिन्दी का दूसरा रूप वह है जिसमें ईंशाअल्ला खाँ, अमानत लखनवी तथा राजा शिवप्रसाद 'सितारेहिन्द' आदि रचना कर रहे थे। ज़ाहिर है कि भारतेन्दु ने ब्रज एवं अवधी को हिन्दी की पुरानी चाल नहीं माना। क्योंकि भारतेन्दु खड़ी बोली हिन्दी में गद्य लिखने के साथ-साथ १८७३ के बाद भी जीवन पर्यंत ब्रज भाषा में कवित्त, सवैया आदि लिखते रहे। यदि उन्होंने ब्रज भाषा एवं अवधी को हिन्दी की पुरानी चाल माना होता तो वे इन भाषाओं में रचनाकर्म नहीं करते, क्योंकि पुरानी चाल भारतेन्दु को पसंद नहीं थी, तब ज़ाहिर है कि भारतेन्दु ने हिन्दी की पुरानी चाल उर्दू, अरबी की पदावली युक्त उस हिन्दी को माना है जिसका प्रयोग ईंशाअल्ला खाँ, राजा शिवप्रसाद आदि अपनी रचनाओं में करते आए थे।

हिन्दी संस्कृत तो बेटी प्यारी

सन् 1873 एक अन्य दृष्टि से भी निर्णायक वर्ष है। इस वर्ष भारतेन्दु द्वारा प्रकाशित होने वाली पत्रिका 'कविवचनसुधा' अपने प्रकाशन के पाँच वर्ष पूरे

कर लेती है। संभवतः भारतेन्दु को ऐसा लगता हो कि 'कविवचनसुधा' ने विगत पाँच वर्षो में हिन्दी को नई चाल में ढालने का कार्य सम्पन्न किया है| यदि यह तथ्य ठीक है तो कहना न होगा कि भारतेन्दु के लिए हिन्दी की नई चाल का मतलब संस्कृतनिष्ठ हिन्दी का प्रयोग है| भारतेन्दु के इस दृष्टिकोण ने हिन्दी आंदोलन को बहुत दूर तक प्रभावित करने का कार्य किया| बहुत पुराने समय से ही संस्कृत को देवभाषा माना जाता था तथा संस्कृत भाषा के इस देवत्व को लेकर अनेक बहसें होती रहती थी| भक्तिकालीन साहित्य इसका प्रमाण है| 19वीं सदी के उतरार्द्ध में चलनेवाले हिन्दी आंदोलन ने संस्कृत के इस देवत्व को पुनः प्रतिष्ठित करने का कार्य किया |

यथा-

"माता त्वदीय सूची संस्कृत देववाणी
वर्णावली ताप मनोहर रूपखानी |
अत्यंत शुद्ध लिपि होती सदैव तेरी
अल्प प्रयास महँसीधी सधे घनेरी"||[2]

('नागरी! तेरी यह दशा' से
महावीर प्रसाद द्विवेदी)

महावीर प्रसाद द्विवेदी की इस कविता में संस्कृत के पवित्रता बोध की ओर संकेत तो है ही साथ ही नागरी लिपि की स्तुति संस्कृत की अत्यंत रमणीय एवं मनोहर पदावली में की गयी है| इससे पहले कि हम द्विवेदी जी द्वारा नागरी लिपि के समर्थन में दिये गए दूसरे तर्क तक जाएँ, एक महत्वपूर्ण तथ्य पर विचार करना आवश्यक है कि हिन्दी आंदोलनकारियों ने नागरी

वर्णमाला तथा संस्कृत को लेकर जिस तथाकथित पवित्रता बोध को निर्मित किया, क्या उसका कोई तार्किक आधार भी है? संभवतः नहीं, एक किवदंती है कि मध्यकाल में एक तमिल कवि से जब अपनी देव स्तुतियाँ संस्कृत में लिखने के लिए लोगों ने प्रार्थना की तो उसने उत्तर दिया कि 'यदि संस्कृत देवों की भाषा है तो तमिल क्या चोरों की भाषा है'|

तात्पर्य यह है कि हर भाषा-भाषी समाज अपनी भाषा को लेकर इसी तरह के अन्य तर्क निर्मित कर सकता है| जब देवों के होने या न होने का कोई तार्किक आधार नहीं है तब संस्कृत की देवभाषा होने या न होने संबंधी बहस एकदम बेमानी हो जाती है। लेकिन इस तथ्य से इतना स्पष्ट है कि इस तरह की कविताओं ने हिन्दी आंदोलंकर्ताओं एवं आम जनता के बीच भावुकता के साथ संस्कृत के पवित्रता बोध को बढ़ाया साथ ही एक भाषिक आंदोलन को सांप्रदायिक रंग भी प्रदान कर दिया| यह सांप्रदायिक रंग परवर्ती काल में कम होने के बजाय और बढ़ता ही चला गया और कालांतर में यही संस्कृतनिष्ठ हिन्दी साहित्यिक हिन्दी का पर्याय मान ली गयी| स्वाधीनता प्राप्ति के बाद जब भारत सरकार ने पारिभाषिक शब्दावली का काम शुरू किया तब भी उन पारिभाषिक शब्दावली निर्माताओं के मस्तिष्क में यह बात बराबर बनी रही और इसी कारण से उर्दू के अनेक बहुप्रचलित शब्द पारिभाषिक शब्दावली की सीमा में नहीं स्वीकार किए गए| जैसे अर्जी, कानून इत्यादि| इन शब्दों के स्थान पर प्रार्थना पत्र, विधि इत्यादि शब्दों का प्रयोग यह दर्शाता है कि उर्दू और हिन्दी के मध्य जो खाई उत्पन्न हुई थी वह आगे चलकर और चौड़ी ही हुई| कानून के स्थान पर विधि शब्द का प्रयोग संस्कृत की प्रतिष्ठा मात्र के लिए ही नहीं बल्कि स्वाधीन भारत में कानूनों को भी दैवीय बनाने का एक

प्रयत्न है| विधि से अभिप्राय है 'ब्रह्म' यानि की स्वाधीन भारत के समस्त कानून 'ब्रह्म' द्वारा निर्मित हैं या 'ब्रह्म' समान हैं| यह एक बड़ी दिलचस्प यात्रा है जिसका अच्छा और बुरा जो भी श्रेय हो हिन्दी आंदोलन के अगुवाओं को देना पड़ेगा |

नागरी लिपि के महत्व के संदर्भ में महावीर प्रसाद द्विवेदी ने अपनी उपरोक्त कविता 'नागरी!तेरी यह दशा' में दूसरा तर्क यह दिया कि वह अत्यंत अल्प प्रयास में भी सीखी जा सकती है और अनपढ़ लोग भी बिना विद्यालय गए इस लिपि को पढ़ने में समर्थ हो जाते हैं| इस तर्क का भी कोई बुनियादी आधार दिखाई नहीं देता| यदि इस संदर्भ में किसी उर्दू के शायर या कवि ने उर्दू के लिए ठीक यही बात कही होती तो यह निष्कर्ष निकाल पाना कठिन हो जाता कि दोनों में से किसकी बात को सही माना जाए| इस प्रकार हम देखते हैं कि लिपि शीघ्र सीखे जाने या नागरी लिपि की शुद्धता के संदर्भ में जो भी तर्क दिये गए वे असल में तर्क नहीं बल्कि निष्कर्ष थे। संभवतः इसका कारण यह है कि उस काल तक भाषा और लिपि संबंधी बहस का कोई भाषा वैज्ञानिक या लिपि वैज्ञानिक आधार नहीं था, बल्कि उसके भौतिक कारण थे, जिसमें भाषा एवं लिपि से कोर्ट-कचहरियों एवं राजस्व विभाग में जुड़ा हुआ रोजगार एक प्रमुख मुद्दा था|

वर्णमाला की मनोहरता

हिन्दी आंदोलन संबंधी अनेक कविताओं में उर्दू वर्णमाला की अस्पष्टता की ओर संकेत किया गया है| उर्दू के विरोध में फ़ारसी लिपि की अस्पष्टता का तर्क बड़े ज़ोर-शोर से दिया गया|

"नारी से वारी बनै भूप से होवे भूत|

पानी सो नानी बनै देखों चरित अनूप||"[3]

उच्चारण के संदर्भ में केवल उर्दू भाषा पर ही आरोप नहीं लगाय गए बल्कि अरबी के लिए तो इससे भी अधिक हास्यास्पद पदावली का प्रयोग किया गया|

जैसे- "अरबी बदन में भरी बहुत चरबी

ताड़ तोड़ने गला फोड़ने का नुस्का

बलबलाने में ऊंट को हरा देती है|"[4]

उर्दू और अरबी की कठिन उच्चारण की समस्या केवल उच्चारण तक सीमित हो ऐसा नहीं है| शब्द-दोष, लिपि-दोष और उच्चारण-दोष की ओर संकेत यदि इस भावना से किए जा रहे होते कि नागरी के प्रयोग से जनता को फायदा होगा तब यह बात ठीक होती, पर स्थिति वास्तव में ऐसी नहीं है| उर्दू के संदर्भ में महावीर प्रसाद द्विवेदी की राय को देखने से यह बात और अधिक स्पष्ट हो जाएगी|

"न्यायालयादी मह लेखक वृन्द बाढ़ी

हस्त्प्रल्म्बपरिणाम हिलाय दाढ़ी

देखौ !अहो ! कुलिकेश शब्द भाखै

मानापमान तव, ते मन में न राखै|"[5]

हिलाय दाढ़ी' कहकर द्विवेदी जी ने स्पष्ट ही मुसलमानों की ओर संकेत किया है| न्यायालयों आदि सरकारी संस्थानों में मुसलमान दाढ़ी हिला-हिलाकर उर्दू एवं अरबी के अत्यंत कर्कश शब्दों का प्रयोग करते हैं; ऐसा द्विवेदी जी का मानना है| इस प्रकार उन्होंने उर्दू को मुसलमानों की ही भाषा होने की ओर सीधा संकेत किया है| द्विवेदी जी यह जानते होंगे कि संस्कृत में भी कर्कश शब्दों की कमी नहीं है, कोमलता एवं कठोरता केवल भाषा-समाज की ही नहीं वरन मानव-समाज की भी विशेषता है | हिन्दी आंदोलन संबंधी कविताओं के अध्ययन से यह बात स्पष्ट हो जाती है कि उर्दू मुसलमान समुदाय कि भाषा है, यह केवल द्विवेदी जी की राय नहीं है बल्कि हिन्दी आंदोलन से संबद्ध हरेक आंदोलनकारी की यही राय स्पष्ट होती दिखाई देती है| हिन्दी आंदोलन के दौरान "उर्दू को मुस्लिम अस्मिता का प्रतीक बनाने मे सबसे ज्यादा हाथ इसके प्रांतीय राजभाषा होने का था|"[6]

श्वौला हूँ भभूका हूँ

हिन्दी आंदोलन के पक्ष में लिखने वाले विद्वानों ने अपनी रचनाओं से उर्दू और हिन्दी की जो छवियाँ गढ़ीं उनमे हिन्दी की बेचारगी, लाचारी और उर्दू की सुदृढ़ स्थिति की ओर संकेत किया| हिन्दी आंदोलन संबंधी अनेक कविताओं में उर्दू और हिन्दी को स्त्रियों के रूप में चित्रित किया गया है| इन स्त्रियों की वेश-भूषा एवं चारित्रिक विशेषताओं के चित्रण के माध्यम से भी बहुत सी बातें कह दी गयी हैं |

"हिन्दी- इस पर एक औरत जो बेवा का लिबास पहने हुये तड़प के बोल उठी उसका नाम हिन्दी था |

वहीं उर्दू के संदर्भ में

-एक बढ़िया पोशीना और जेवर से जगमगाती हुई नाजनीन ने

आकर उसका गला भींच लिया और लगी गुस्सा झाड़ने |

(यह मक़सूम की प्यारी बीबी उर्दू थी)"[7]

यहाँ यह उल्लेख करना आवश्यक है की श्रीधर पाठक की उक्त पंक्तियाँ असल में एक स्वप्न कथा (इंद्रसभा) है और हिन्दी तथा उर्दू के संदर्भ में पाठक जी ने जिन बिंबों का प्रयोग किया है वह उनकी फैंटेसी है| यह फैंटेसी पाठक जी के मन में अकारण निर्मित हुयी हो ऐसा नहीं है, बल्कि इस फैंटेसी के पीछे हिन्दी आंदोलन की एक आम राय है| हिन्दी को 'बेवा' के रूप में चित्रित कर जनमानस से उस पर दया करने तथा अपनाने के लिए कहा गया है वहीं उर्दू के लिए 'नाजनीन' शब्द का प्रयोग किया गया है, जो मोहक स्त्रियों के लिए प्रयोग किया जानेवाला शब्द है|

ऐसे रचनाकारों के अनुसार उर्दू अपनी शृंगारिक रचनाओं के कारण ही लोगों को अपनी ओर आकर्षित करती है और इन रचनाकारों की यह भी आम राय है की इस तरह की रचनाएँ \ गज़ले लड़कों को बहकाने के लिए होती है जो उन्हें बनाने के बजाय बिगाडती ज्यादा हैं| अपने सुप्रसिद्ध बलिया व्याख्यान में भारतेन्दु ने लिखा "मीरहसन की मसन्वी और इंद्रसभा पढ़कर छोटेपन से ही लड़कों का सत्यानाश मत करो| होश संभाला नहीं की पट्टी मार ली, चुस्त कपड़ा पहना और गज़ल गुनगुनाए| 'शौक तिफ़्ली से मुझे गुल की जो दीदार का था ,न किया हमने गुलिस्ताँ का सबक याद कभी|' भला सोचो की इस हालत में बड़े होने पर वे लड़के क्यों न बिगड़ेंगे | अपने लड़कों को ऐसी किताबें छूने भी मत दो| अच्छी से अच्छी उनको तालीम दो|

पिनशिन और वजीफा या नौकरी का भरोसा छोड़ो| लड़कों को रोजगार सिखलाओ |"[8]

समान्य तौर पर भारतेन्दु का यह कथन उपदेश की शैली में तो ठीक नजर आ रहा है लेकिन भारतेन्दु का आशय केवल मुस्लिम समुदाय को आगाह करने भर का है, इसमें संदेह है| स्पष्ट है कि गज़ल गुनगुनाने से, भारतेन्दु कि दृष्टि सकारात्मक नहीं है यह उद्धरण से जाहिर है| यह और बात है कि भारतेन्दु ने 'रसा' उपनाम से गज़लें लिखीं और बिगड़े भी नही| यहाँ भारतेन्दु की नकारात्मक दृष्टि का आशय यह है कि वे उर्दू की साहित्य रचना को जिस ढंग से देख रहे है उसमें उर्दू की कुल पूंजी केवल गज़ल गुनगुनाने तक ही सीमित है| भारतेन्दु के समकक्ष रचनाकर प्रतापनारायण मिश्र भी उर्दू की कुल पूंजी की तुलना एक वेश्या से करते हैं जो चार-पाँच गज़ल जानती है|[9]

भारतेन्दु ,प्रतापनारायण मिश्र या श्रीधर पाठक के 'गज़ल गुनगुनाने' के संदर्भ में यह सवाल उठना स्वाभाविक है कि इन रचनाकारों के सामने दो सौ सालों तक लिखा गया वह रीतिकालीन साहित्य भी था जो उर्दू के किसी भी शायर की तुलना में अधिक मादक था| तब फिर क्यों इन रचनाकारों ने इस साहित्य को खारिज करने का 'रीतिवाद विरोधी अभियान' नहीं चलाया| हालाँकि डॉ रामविलास शर्मा ने 'रीतिवाद विरोधी अभियान' का श्रेय महावीर प्रसाद द्विवेदी को दिया है, पर डॉ शर्मा ने यह बताना जरूरी नहीं समझा कि 'रीतिवाद विरोधी अभियान' में द्विवेदी जी ने किन-किन बातों का विरोध किया है|[10] द्विवेदी जी का 'रीतिवाद विरोधी अभियान' असल में शृंगार विरोधी कम शास्त्र विरोधी ज्यादा था| शास्त्र विरोधी भी वहीं तक जहां तक नायिका भेद एवं अलंकरण आदि आते हैं |

नागरी के वर्णन की मनोहरता एवं गुणकारी स्थिति का वर्णन करते-करते हिन्दी आंदोलन के कार्यकर्ताओं द्वारा गाहे-बगाहे हिन्दी-उर्दू की छवियों का निर्माण भी होने लगा था| महावीर प्रसाद द्विवेदी जब उर्दू का सम्बोधन 'हिलाय न सकत दाढ़ी' कहकर करते हैं तब स्पष्ट है कि वह उर्दू को मुस्लिम समुदाय से जोड़कर देखते हैं और यही 'लश्कर से आई उर्दू 'श्रीधर पाठक के लिए 'नाजनीन' बन जाती है तो किसी और हिन्दी आंदोलनकारी के लिए उर्दू का अर्थ 'ब्रिटिश श्वानिनी' हो जाता है | हिन्दी आंदोलन के दौरान अंतिम तीन दशकों में हिन्दी आंदोलन के कार्यकर्ताओं ने उर्दू की छवि ऐसी नाचने-गानेवाली वेश्या के रूप में गढ़ी, जिसके दिलो-दिमाग में हिन्दी एवं हिन्दू के लिए सदैव छल-कपट का वास रहता है| यह उर्दू अपने रूप-शृंगार से हिन्दू घरों के गृहणियों को जीवन भर दुख देती है| उर्दू को वेश्या के रूप में चित्रित करने का जो अर्थ ध्वनित होता है वह यही है कि उर्दू अपने नृत्य गजल-गायन से रियासतों के नरेशों-नवाबो एवं अँग्रेजी शासको को अपनी तरफ मिला लेती है जिसके कारण अँग्रेजी सरकार नागरी के संबंध में कुछ करती नहीं है| इसके विपरीत हिन्दी की छवि एक ऐसी 'आदर्श हिन्दू गृहणी' के रूप में गढ़ी गयी जो बाहर की उर्दू पतुरिया के दिये दुखों या सौत की मनमानियों को सहकर भी अपनी निष्ठा और अपने धर्म को नहीं छोड़ती| यही नहीं हिन्दी की छवि को अधिकतर हिन्दी आंदोलनकारियों ने अपनी कविताओं, रचनाओं, लेखों में विधवा के रूप में चित्रित किया है|

उन्नीसवीं सदी में हिन्दी-उर्दू विवाद के दौरान हिन्दी-उर्दू की छवियों के निर्माण के सहारे धार्मिक प्रतीकों की राजनीति भी ज़ोर पकड़ रही थी| हिन्दी-उर्दू की छवियों का निर्माण और उन छवियों के सहारे स्थिर हुये प्रतीकों के राजनीतिक प्रभाव के संदर्भ में प्रो॰ वीर भारत तलवार लिखते है "19वीं सदी

में हिन्दी-उर्दू विवाद के दौरान बनाई गई उर्दू की छवि शिक्षित हिंदुओं के हिस्सों में आज तक जारी है| जाहिर है यह विवाद सिर्फ भाषाओं के बीच नहीं था, जो भाषा को प्रतीक बनाकर एक-दूसरे के खिलाफ अपनी घृणा और विरोध का इजहार कर रहें थे| कई सालों तक हिन्दी पत्र-पत्रिकाओ मे उर्दू के खिलाफ लेखों, कविताओं, गज़लों और व्यंग्यचित्रों का छपना जारी रहा|"[11] उर्दू के खिलाफ हिन्दू भद्रवर्ग की बढ़ती हुई घृणा को श्रीधर पाठक कुछ इस तरह व्यक्त करते है-

(भूमिका-नाचना बी उर्दू का बीच हिंदुस्तान के और ब्यान करना अहवाल अपना साथ दिलचस्प तान के)

"श्धौला हूँ भभूका हूँ शरारत से भरी हूँ |

उर्दू है मेरा नाम जवानो मे परी हूँ |

है स्याह मेरा रंग बदलता कभी नही |

बहकाने भुलाने में जमाने से खरी हूँ |

* * * * * *

अँग्रेजी अदालत में है मेरा बड़ा रुतबा |

बतला तो दो भला मै किसी से भी डरी हूँ |

* * * * *

हिन्दू की हिकामत से मेरा बस नहीं चलता|

कायथ व मुसलमान पै दिलोजाँ से भरी हूँ |"[12]

स्पष्ट है कि उपरोक्त पंक्तियों में केवल उर्दू को वेश्या के रूप में चित्रित भर कर देने की मंशा श्रीधर पाठक की नहीं है बल्कि उर्दू के इस चित्रण के सहारे उन्होंने उर्दू की राजनीतिक-प्रशासनिक स्थिति का भी वर्णन किया है| यहाँ श्रीधर पाठक 'कायस्थ' लोगों पर व्यंग्य भी करते हैं कि वे हिन्दू होकर भी उर्दू को बढ़ावा देते हैं| हिन्दी आंदोलन के दौरान कायस्थ लोगों की स्थिति को लेकर हिन्दी आंदोलनकारियों ने अपनी कविताओं में खूब व्यंग्यबाण छोड़े और कुछ आंदोलनकारियों ने यह आग्रह भी प्रकट किया कि उर्दू छोड़ हिन्दी को अपनाओ और उसका प्रचार-प्रसार करो| इस संदर्भ में श्रीधर पाठक अपनी रचना में लिखते है –

"हिन्दी का अब तो कोई कदरदाँ रहा नहीं |

बाइस यही है उसका रुतवा जरा नहीं ||

कायथ है जितने मुल्क में पढ़ते है फारसी |

हिन्दी का नाम लेना भी उनको खां नहीं ||"[13]

निज भाषा का प्रश्न

हिन्दी आंदोलन के समर्थक रचनाकारों के लिए हिन्दी आराध्य इसलिए है क्योंकि वह उनकी भाषा व लिपि है| भारतेन्दु हिन्दी की उन्नति चाहते हैं| क्यों ? क्योंकि भारतेन्दु के चिंतन में भाषा की केंद्रीय स्थिति है, वह सब चिंताओ के मूल में है-

"निज भाषा उन्नति अहै सब उन्नति को मूल

बिन निज भाषा-ज्ञान के मिटत न हिय को शूल"[14]

यहाँ प्रश्न उठना स्वाभाविक है कि 'निज भाषा' कहकर भारतेन्दु ने किन-किन वर्गो की ओर संकेत किया है| आखिर भारतेन्दु के यहाँ निज भाषा की अवधारणा क्या है ? इस सवाल से टकराय बगैर हिन्दी जाति एवं हिन्दू जाति के अंतःसंबंधों को ठीक ढंग से नहीं देखा जा सकता| यहाँ एक और प्रश्न उठना स्वाभाविक है कि 'निज भाषा' की उन्नति के लिए उर्दू के अतिरिक्त क्या किसी अन्य भाषा का भी विरोध किया गया है| इस सवाल के आलोक में ही भारतेन्दु युगीन राष्ट्रवाद एवं राष्ट्रीय चेतना को ठीक ढंग से समझा जा सकता है |

"तासो सबहीं भांति इसकी उन्नति आज |
एकहीं भाषा महँ अहै जिनकी सकल समाज ||
धर्म जुद्ध विद्या कला गीत कवि अरु ज्ञान |
सबके समझन जोग है भाषा मांही समान ||
भारत में सब भिनन अति ताही सो उत्पात |
विविध देस मतहू विविध भाषा विविध लखात ||"[15]

भारतेन्दु के अनुसार योरोप के उन्नति का एक कारण यह भी है कि वह राष्ट्र एक भाषा-भाषी है| एक भाषा-भाषी राष्ट्र का सबसे बड़ा फायदा भारतेन्दु ने यह बतलाया कि ऐसा होने पर धर्म, युद्ध, विद्या, कला संबंधी हर ग्रंथ हर व्यक्ति के समझने योग्य होता है| यह तो रही योरोप की बात, हिंदुस्तान के संदर्भ में भारतेन्दु ने बहुभाषिकता एवं धार्मिकता को उन्नति के

मार्ग का सबसे बड़ा रोड़ा माना| संभवतः इसीलिए उन्होंने आगे चलकर बलिया व्याख्यान में इस बात को दोहराया था कि जो हिंदुस्तान में रहे सो हिन्दू और इसी स्वर में स्वर मिलाते हुये भारतेन्दु मण्डल के एक अन्य सदस्य ने यह समस्या पूर्ति की थी ,जिसकी अंतिम दो पंक्तियाँ है, 'जपहूं निरंतर एक जबान हिन्दी-हिन्दू-हिंदुस्तान'| हिन्दी आंदोलन के दौरान 'हिन्दी-हिन्दू-हिंदुस्तान' के नाम से अर्थात एक भाषा, एक धर्म, एक राष्ट्र की जो राष्ट्रीय चेतना की अवधारणा निर्मित हुई उसका भविष्य क्या हुआ हम सभी जानते हैं| स्पष्ट है कि तत्कालीन समय में 'निज भाषा' के सहारे पनप रही हिंदीभाषी हिन्दू जातीयता में साझे प्रतीकों का अभाव था जिसका परिणाम हुआ कि भाषाई अस्मिता के नाम पर हिन्दू-मुस्लिम के बीच अलगाववाद की चेतना पैदा हुई और बड़े पैमाने पर मुस्लिम समुदाय का विरोध भी शुरू हुआ |

है है उर्दू हाय हाय

पश्चिमोत्तर प्रांत में उन्नीसवीं सदी के अंतिम तीन दशकों में भाषा-लिपि का प्रश्न एक बुनियादी प्रश्न था, जिससे आम जनता का सरोकार भी जुड़ा हुआ था| लेकिन राजकाज एवं शिक्षा में हिन्दी अथवा देवनागरी की मांग एक बात थी पर उर्दू के प्रति नफरत एवं शत्रुता का रुख अख़्तियार कर लेना भाषायी प्रश्न भर मात्र नहीं था| क्योंकि हिन्दी आंदोलन के दौरान जिस ढंग की कविता लिखी जा रही थी उसमें मुस्लिम विरोध, उर्दू विरोध की तुलना में कई स्थानों पर अधिक नजर आता है| भारतेन्दु ने जून 1874 की हरिश्चंद्रिका के एक अंक में राजा शिवप्रसाद द्वारा अँग्रेजी सरकार को दिये गए मेमोरेंडम के बाद उर्दू की मौत का स्यापा लिखा -

"है है उर्दू हाय हाय | कहाँ सिधारी हाय हाय |

कहाँ सिधारी हाय हाय | मुंशी मुल्ला हाय हाय |"[16]

उर्दू की मौत की ऐसी मनोकामना के पीछे अँग्रेजी राज की हिंदुओं-मुसलमानों की पारस्परिक सांप्रदायिक एकता में जहर घोलने की प्रवृत्ति काम कर रही थी और सबसे दुखद स्थिति यह है कि उस नीति के भोले-भाले औज़ार के रूप में भारतेन्दु, प्रतापनरायण मिश्र, बालकृष्ण भट्ट, श्रीधर पाठक जैसे रचनाकार-लेखक उर्दू-हिन्दी के बहाने खुलमखुल्ला मुसलमानों के विरुद्ध मुट्ठियाँ ताने हुये थे| इस दौरान होना यह चाहिए था कि भारतेन्दु जैसे प्रतिनिधियों को उर्दू के प्रति पैदा हो रही घृणा की प्रवृत्ति को कम करना चाहिए था और सांप्रदायिक एकजुटता कायम कर अँग्रेजी शासन के विरुद्ध अपनी लड़ाई को तेज करना चाहिए था, जबकि ऐसा नहीं हो रहा था| उसी दौर में भाषा, लिपि के प्रश्न की लड़ाई को उठाने वाले राजा शिवप्रसाद सितारेहिंद, अलताफ़ हुसैन, हाली, सौदा, ज़ौक़, अज़ीमुल्ला खाँ ने सांप्रदायिक रुख अख़्तियार करना हिंदुस्तान की संप्रभुता के लिए घातक समझा |

इस बिन्दु पर हम यह समझ सकते हैं कि हिन्दी आंदोलन केवल नागरी की मान्यता अथवा हिन्दी भाषा के प्रचार के लिए चलाया गया आंदोलन नहीं है| बल्कि यह एक ऐसा आंदोलन है जिसने व्यापक स्तर पर उग्र राष्ट्रवाद का प्रचार किया जो आर्य समाज के शुद्धतावादी दृष्टिकोण से जुड़कर आगे चलकर भारत विभाजन का एक बड़ा कारण बना| आधुनिक भारत में सांप्रदायिकता के प्रचार का श्रेय प्रायः अंग्रेजों को ही दिया जाता रहा है पर इस सांप्रदायिकता के नीव में कौन से कारक थे यह समझने के लिए हिन्दी आंदोलन के दौरान बन रही राष्ट्रवादी चेतना को समझना अधिक जरूरी

हो जाता है| बांग्ला लेखक बंकिमचन्द्र चटर्जी से लेकर हिन्दी आंदोलन के अगुवा भारतेन्दु तक सबने एक मत में अंग्रेज़ो को मुसलमानों से बेहतर माना | बंकिम ने बंगाल में अनेक अकाल देखे थे| इन अकालों की भयावहता का परिचय उनके द्वारा रचित उपन्यास 'आनंद मठ (1822)' से मिलता है| यह भी स्पष्ट है कि यह अकाल अँग्रेजी शासन् की कुरीतियों का परिणाम था लेकिन बंकिम ने उपन्यास मे अकाल का कारण मुसलमान राजाओ को माना| यही स्थिति हिन्दी आंदोलन के अगुवा कार्यकर्ताओं की भी रही| भारतेन्दु एवं उनके मण्डल के सभी रचनाकार एक भाषा, एक राष्ट्र, एक धर्म के सिद्धांत के आधार पर केवल मुसलमानों का विरोध करते दिखाई देते हैं| इसका कारण क्या है? भारतेन्दु ने एक स्थान पर अंग्रेजों एवं मुसलमानों की तुलना करते हुये लिखा "जो कुछ हो मुसलमानों की भाँति (अंग्रेजों ने) हमारी आंखो के सामने हमारी देव मूर्तियाँ नही तोड़ीं और स्त्रियो को बलात्कार से छीन नहीं लिया न घास की भाँति सिर काटे और न जबर्दस्ती मुँह में थूककर मुसलमान किए गए, अभागे भारत को यही बहुत है |"[17]

इस प्रकार उपरोक्त उद्धरण से स्पष्ट है कि उन्नीसवीं सदी के अंतिम तीन दशकों में हिन्दी आंदोलन के माध्यम से जिस राष्ट्रीय चेतना का विकास हो रहा था, वह असल में इस्लाम विरोधी राष्ट्रीय चेतना अधिक है, अंग्रेज़ विरोधी कम|

भारतेन्दु ने हिन्दी की उन्नति पर दिये अपने व्याख्यान में उद्योग-धंधे, विज्ञान, टेक्नॉलाजी आदि के विकास की आवश्यकता बतलाते हुये हिंदुस्तान के लोगों की विवशता एवं उनकी पराधीनता का उल्लेख किया है-

बिना पढ़े अब या समै चलै न कोउ बिधि काज |

दिन दिन छीजत जात है या सो आर्य समाज ||

कल के कल बल छलन सों छले इत्ते के लोग |

नित नित छन सो घटत है बढ़न है दुख सोग ||

मारकीन मलमल बिना चलत कछू नहीं काम |

परदेसी जुल्हान के मानहु भय गुलाम ||

* * * * *

परदेसी की बुद्धि अरु वस्तुन की करि आस |

पर बस है कब लौ कहो रहिहौ तू है दास ||"[18]

आर्थिक दृष्टि से हिंदुस्तान की पराधीनता के दंश को भारतेन्दु महसूस करते हैं| बार-बार अपनी कविताओं, भाषणों, लेखों में भारतेन्दु भारतवासियों से एकता और मेल-मिलाप की जरूरतों को रेखांकित करते हैं, ताकि भारत की उन्नति हो, पर सदैव आर्य जाति की दुर्दशा का ही उल्लेख करते हैं| ऐसा इसलिए है कि भारतेन्दु या उन जैसे और हिन्दी आंदोलनकारी इस्लाम को बाहर से आये हुये धर्म और संस्कृति के तौर पर देखते हैं| उनकी नज़र में हिंदुस्तान की साझी संस्कृति का कोई अस्तित्व ही नहीं है जिसमें हिन्दू-मुसलमान वर्षों से एकसाथ रहते आ रहे थे| भारतेन्दु के जिस बलिया व्याख्यान को अक्सर देशभक्ति एवं राष्ट्रीयता का प्रमाण समझकर बार-बार प्रस्तुत किया जाता है उसमें भी भारतेन्दु के विचार अँग्रेजी राज की अधीनता

में ही अपने सपने को देखता है| यह स्थिति सिर्फ भारतेन्दु की ही नहीं बल्कि हिन्दी आंदोलन के और कार्यकर्ताओं की भी थी |

"आर्य होकर भी उरदू बढ़ाओ

धर्म कर्म वृथा सब गवाओ

मेरी विनती को मानो पियारों

सब मिली हिन्दी प्रचारों-प्रचारों ||"[19]

उन्नीसवीं सदी के अंतिम दो दशकों में उभर रही राष्ट्रीय चेतना के प्रचार-प्रसार के लिए अथवा राष्ट्र की सेवा हेतु नागरी लिपि की एक ऐसी छवि बन गई जो राष्ट्रमाता की छवि का पर्याय बन गई | इस माता की तुलना में उर्दू का चित्रण एक ऐसी कुलटा स्त्री के रूप में किया गया जो जबरन हिंदुस्तान के घर मे घुस आई है और उसने असल माता नागरी को घर से निकाल दिया है| भारत देश की दुर्दशा का यही कारण है और यदि उर्दू को बहिष्कृत कर नागरी को पुनः राष्ट्रमाता के रूप में प्रतिष्ठित कर दिया जाए तो हिंदुस्तान में फिर से सुख और शांति वापस लौट सकती है |

"याते यहि को मार के दीजे देश निकारि

तब तो भारत देश में सुख की बहै बयारि ||"[20]

भारत देश में सुख की हवा बहे इसके लिए जरूरी है कि उर्दू को देश निकाला दे दिया जाय| असंगत से दिखने वाले इन तथ्यों के बीच संगति यह है कि उर्दू पश्चिमोतर प्रांत में अदालतों में निचली कार्यवाहियों के लिए प्रयुक्त होने वाली भाषा और लिपि(फारसी) थी |

उर्दू है कचहरी बीच पड़ी डर नाहीं

हिन्दी आंदोलन की कविताओं में उर्दू का संबंध बार-बार कचहरी से जोड़ा जा रहा था| जाहिर है कि हिन्दी आंदोलनकारियों के मन में उर्दू को लेकर सबसे बड़ा रोड़ा यही था कि कोर्ट-कचहरी एवं रेवेन्यू कार्यालयों में काम-काज की भाषा तथा लिपि के बतौर उर्दू-फारसी का प्रयोग होता था| यही कारण था कि उन्नीसवीं सदी में हिन्दू हितों एवं मुस्लिम हितों के बीच सबसे खुला विरोध सरकारी नौकरियों के प्रसंग में प्रकट हुआ, जिन्हें पाना शिक्षित मध्यवर्ग की सबसे बड़ी आकांक्षा थी|[21]

उर्दू कि स्थिति को लेकर हिन्दी आंदोलंकारियों ने यह दलील दी कि अधिकांश हिन्दू उर्दू नहीं पढ़ते हैं जिसकी वजह से राजकीय नौकरी उन्हें नहीं मिल पाती है| अगर कचहरी में नागरी लागू हो जाती है तो हिंदुओं को नौकरी आसानी से मिल जाएगी जो फिलहाल उर्दू के कारण मुसलमानों को मिल जाती है| सुख की हवा का आशय यही है कि हिन्दी के राजभाषा बन जाने पर कार्यालयी पदों पर अधिकांश नियुक्तियाँ हिंदुओं की होगी और शासन् में उनकी भागीदारी भी अधिक होगी| उर्दू के होने के कारण सभी ऊँची नौकरियों में मुसलमान काबिज होते चले जा रहे थे| इस बात की जितनी चिंता भारतेन्दु को थी उतनी ही अन्य हिन्दी आन्दोलकारियों को भी थी| पश्चिमोत्तर प्रांत में नागरी को सन् 1900 में कोर्ट-कचहरी में प्रयोग की इजाजत मिल जाने पर हरीमंगल मिश्रा ने 'हिन्दी प्रदीप' में एक कविता लिखी –

"धन्य हमरे सौभाग्य दिवस इत दैव पठाये|
परम बिबेकि धीर वीर मेकडानल आए |
राजकाज में रही सभी थल उरदु भाखा |
लाट महोदय आई नागरी को पत राखा |"[22]

बिस्मिल्लाह को छोड़ श्रीगणेश को नाम

हिन्दी आंदोलन के दौरान उर्दू विरोध का एक दूसरा आशय यह भी है कि वह पहले की तुलना में अधिक सांप्रदायिक एवं उग्र होता गया| धर्म और आस्था से जुड़े प्रतीकों का सीधा प्रयोग हिन्दी आंदोलन की कविताओं में किया जाने लगा|

"तुम हरुफ़ हताला सुनो अर्थ धुन गा दो |

ब्रह्म और महाधों विष्णु उधर टरका दो |

हम लिखे जहां फिकवाय वहाँ फुकवा दो |

नहि पकड़ जाऊगे कभी नुकम बतला दो |

कोई लिखे किसतियाँ वहाँ कसाबियाँ लादो |"[23]

हिन्दी-उर्दू का विवाद प्रारम्भ में केवल लिपि या भाषा का ही विवाद था लेकिन हिन्दी आंदोलनकारियों ने हिन्दी-उर्दू के विवाद को एक सांप्रदायिक विवाद भी बना डाला | इस संदर्भ में अनेक रचनाकारों ने उर्दू विरोध के लिए पूरे भारतीय इतिहास का सरलीकरण कर उसे जनता के सामने प्रस्तुत किया-

"पृथ्वीराज जयचंद ने विग्रह कीना |

तब तुर्क आई के हिंदी दखल भरलीना |

न धर्म लूटे सब मुददे उपद्रव कीना |

भारत वासिन को बहुत दुख दीना |

जब ते ए देस मेन तुरुक पछाहीं |

उर्दू बीबी कर जाल बढ़ी जग माही |

* * * * *

फिर बहुत दिवस को राज हिन्द को कीना |

फिरी निकलि गया अंगरेज आये के छीना |

उर्दू को राज के कारबार सब दीना |

हिंदी की न पुछे बात न्याव नहीं कीना |"[24]

उद्धरण से स्पष्ट है की लेखक को भारतीय इतिहास की जानकारी न के बराबर है| वह मुसलमानों के आगमन को उर्दू के आगमन से जोड़कर देखता है | इस तरह से बनाए सरलीकरण के कारण ही उर्दू मुसलमान समुदाय और इस्लाम धर्म का प्रतीक बन गयी और इस प्रतीक को दृढ़ करने में हिंदी आंदोलन ने महत्वपूर्ण भूमिका निभाई| यह केवल एक पहलू है इतिहास के सरलीकरण का दूसरा पहलू यह है कि जिस तर्क के सहारे इन रचनाकारों ने उर्दू को मुसलमानों की भाषा सिद्ध किया उसी तर्क के सहारे हिंदुओं से हिंदी अपनाने की वकालत भी की| स्पष्ट है कि सवाल केवल हिंदी या नागरी को कोर्ट-कचहरी में स्थापित कर देने भर का था |

अपने लड़को को हिंदी पढ़ाओ

हिन्दू हो तुम उर्दू छुड़ाओ

आर्य होकर भी उर्दू बढ़ाओ

धर्म कर्म वृथा सब गवाओं ||"[25]

उर्दू पढ़ने में हिन्दुओं का कर्म ही नहीं बल्कि धर्म भी भ्रष्ट होने की बात कही गई| धर्म भ्रष्ट होने के पीछे यह तर्क दिया गया कि मुसलमान गाय खाते हैं

और गाय हिन्दुओं की माता है| गाय हिन्दुओं की धार्मिकता की प्रतीक भी पुराने समय से रही है| डॉ भीमराव अंबेडकर ने अपनी पुस्तक 'अछूत कौन और कैसे' में इस तथ्य को स्पष्ट रूप से रेखांकित किया है| इतिहास गवाह है कि 1857 की लड़ाई के पीछे गाय की चर्बी और सूअर की चर्बी की क्या भूमिका थी |

इन रचनाकारों के अनुसार मुसलमान उच्च पदों पर नौकरियाँ कर रहे हैं, इसलिए नागरी एवं गाय दोनों की इस देश में बड़ी दुर्दशा हो रही है| इसी संदर्भ के साथ हिंदी आंदोलन के दौरान यह तर्क गढ़ा गया कि नागरी की रक्षा का अर्थ गोरक्षा भी है|

"गोस्वामी जी से मोर प्रार्थना भाई |
जो स्वामी मोर कहाय करे न सहाई||
उन्हीं के देखत पकड़त यवन कसाई |
पर बड़ी लाज की बात न लेत छुड़ाई||
क्या हानि नही यह लाभ तुम्हें जिय भई|
जो करहु न मोर सहाय देखि रह जाई ||
करि-करि विलाप संताप गाय अस रोऊ |
करति विलाप गौ और नागरी दोऊ ||"[26]

हिंदी आंदोलन के दौरान नागरी को लेकर की गई यह व्याख्या केवल गाय जैसे प्रतीकों तक रही हो ऐसा नहीं है| अनेक रचनाकारों ने यह भी प्रमाणित करने की चेष्टा की, कि उर्दू बोलने या पढ़ने-लिखने का अर्थ

मुसलमानों के रीति-रिवाजों, आचरणों एवं धर्म को भी अपनाना है| हिंदी आंदोलन में गोरक्षा का मुद्दा जोड़ने का कारण था हिन्दू भद्रवर्ग को गोलबंद कर एक साथ लाना | इस संदर्भ में प्रो॰ वीर भारत तलवार का यह कथन सही प्रतीत होता है कि "हिंदी या नागरी के प्रतीक से सिर्फ शहरों के शिक्षित समुदायों को गोलबंद किया जा सकता था, जबकि गाय का प्रतीक शहरी और देहाती, शिक्षित और अशिक्षित सबको समान रूप से गोलबंद करने की क्षमता रखता था |"[27]

कारण स्पष्ट है, गोरक्षा का मुद्दा जितना धार्मिक था उससे कहीं ज्यादा राजनीतिक था[28] जिसका सीधा लाभ हिंदी आंदोलन को हुआ| हिंदी आंदोलन के दौरान गाय का इस्तेमाल केवल धार्मिक दृष्टिकोण से ही नहीं हो रहा था बल्कि ऐसे ही धार्मिक प्रतीकों को राजनीतिक रंग में रंगते हुए हिन्दू समुदाय के लोगों से यह आग्रह किया जाने लगा कि वे बिस्मिल्लाह को छोड़ श्री गणेश को अपनाएँ| स्पष्ट है कि बिस्मिल्लाह को छोडने का अर्थ है मुसलमानों का साथ छोड़ अपने धर्म-कर्म को आगे बढ़ाना| कोई हिन्दू हिंदी आंदोलन से पूर्व भी बिस्मिल्लाह का जाप करता हो इसमें तो पर्याप्त संदेह है |

"बिस्मिल्लाह को छोड़ के श्री गणेश को नाम |
सब कोऊ सुमिरन को निसुदिन आठों जाम ||
तब हिंदी को देखियों चौगुण बाढै जोति |
बिना आदर जो दुबरी देखि जरै सब सोखि ||
अलंकार सब पहिर के महा अनुपम होय |
कजरी गावै प्रेम सो भारत उन्नति होय ||"[29]

स्पष्ट है कि हिंदी आंदोलन की विचार प्रणाली में धार्मिक कल्पनाओं, आस्था एवं मिथकीय चेतना की भूमिका बेहद महत्वपूर्ण थी | यह भी सही है कि इन धार्मिक कल्पनाओं एवं मिथकों की भूमिका के सहारे ही हिंदी आंदोलन का प्रचार-प्रसार भी तेज हुआ लेकिन इसके साथ-साथ हिंदी आंदोलन का सांप्रदायिक चेहरा भी उजागर होता गया जिसको किनारे रखकर इस आंदोलन को समग्रता में समझना असंभव है| हिंदी की उन्नति के लिए जितने भी तर्क दिये गए उनमें सामाजिक तर्क बहुत कम हैं, जो हैं वे इतने कमजोर हैं कि उनको देखकर स्पष्ट अंदाजा लगाया जा सकता है कि नौकरी पाने एवं हिन्दुओं की उन्नति के अतिरिक्त अन्य कोई भी बड़ा उद्देश्य हिंदी आंदोलनकारियों का नहीं था| उदाहरण के लिए भारतेन्दु द्वारा दिये गए तर्कों को देखा जा सकता है, जिसमें पहला तर्क भारतेन्दु ने बहुभाषिकता के संदर्भ में दिया –

"पिता बिबिध भाषा पढे पुत्र न जानत एक |

तासों दोउन मध्य में राहत प्रेम अविवेक ||"[30]

इस तर्क में भारतेन्दु कह रहें हैं कि पिता को कई भाषाएँ आती हैं और पुत्र को एक भी नहीं आती| अतः दोनों के बीच बराबर अविवेक बना रहता है| भारतेन्दु यह नहीं समझा पा रहे थे कि क्यों पिता का पुत्र इतना अविवेकी होगा| दूसरा तर्क भारतेन्दु ने अँग्रेजी का समर्थन ना करने के लिए दिया| संभवतः इन रचनाकारों के मस्तिष्क में यदि यह तर्क न रहा होता तो ये उर्दू के विरोध के लिए अँग्रेजी का समर्थन करते |

तर्क देखे- "अँग्रेजी निज नारी को कोउ न सकत पढ़ाई |

नारी पढे बिन एक हु काज न चलत लखाई ||"[31]

भारतेन्दु के अनुसार कोई भी व्यक्ति अपनी स्त्री अथवा पुत्री को अँग्रेजी नहीं पढ़ा सकता यानी अँग्रेजी ढंग की शिक्षा नहीं दे सकता और स्त्रियों को पढ़ाये बगैर काम नहीं चल सकता | यहाँ भारतेन्दु का अँग्रेजी ढंग की शिक्षा का आशय क्या है यह सभी लोग जानते हैं| भारतेन्दु स्त्रियों को किस ढंग से शिक्षित करना चाहते थे यह भी बहुप्रचलित है| बलिया वाले भाषण में भारतेन्दु ने स्त्रियों की आधुनिक शिक्षा जिसका अर्थ कमोबेश अँग्रेजी शिक्षा थी, के संदर्भ में भारतेन्दु ने कहा, लड़कियों को भी पढ़ाइये, लेकिन उस चाल में नहीं जैसे आजकल पढ़ाई जाती हैं , जिससे उपकार के बदले बुराई होती है |[32] स्पष्ट है कि भारतेन्दु को अँग्रेजी शिक्षा से स्त्रियों के बिगड़ने की आशा है पर मर्दों या लड़कों के संदर्भ में 'आधुनिक शिक्षा विरोध' का नियम इतने कड़े अर्थो में लागू नहीं होता| भारतेन्दु स्त्रियों को अँग्रेजी नहीं पढ़ने कि सलाह देने के साथ उनके लिए पढ़ने की वकालत भी करते हैं, लेकिन वहाँ भी सीमा निर्धारित करते हुये लिखते हैं, "ऐसी चाल से उनको शिक्षा दीजिए कि वह अपना देश, कुल-धर्म सीखे, पति की भक्ति करे और लड़को को सहज में शिक्षा दे|"[33]

भारतेन्दु के अनुसार स्त्रियों का पढना जरूरी है परंतु वह सिर्फ इसलिए कि वे साक्षर होकर केवल 'आदर्श हिन्दू गृहणी' के रूप में अपनी भूमिका का जीवन-पर्यंत निर्वाह करती रहें| उनकी समाज निर्माण में कोई केंद्रीय भूमिका न हो| स्पष्ट है कि भारतेन्दु जिस निज प्रश्न के जरिए पूरे देश, समुदाय की उन्नति को देख रहे थे उसमें स्त्रियों की उन्नति का अर्थ कितना सीमित था| यह स्थिति तब थी जब भारतेन्दु के समकालीन समाज सुधारकों, विद्वानों ने स्त्री शिक्षा सुधार को लेकर अपने-अपने क्षेत्र में जोरदार पहल की और उसमें उन्हें सफलता भी मिली| हिंदी आंदोलन का यह एक ऐसा पहलू है जिससे

हिंदी आंदोलन के कार्यकर्ता और समर्थक लगभग अनजान ही रहे| वे सब उर्दू विरोध में इस तरह उलझे रहे कि उन्हें वेश्या(उर्दू) और विधवा(हिंदी) से आगे स्त्री कि कोई भूमिका समाज में दिखी ही नहीं|

हिन्दी आंदोलन से संबंधित कविताओं को पढ़ने के बाद यही महसूस होता है कि अधिकतर कविताएँ भावुकता से ओत-प्रोत हैं| इन कविताओं में जो स्वर मुख्य रूप से उभर कर सामने आता है उसमें हिन्दी, नागरी और गोरक्षा के अलावा संस्कृति की दुहाई का स्वर भी है| यह दुहाई कविताओं में कभी हिन्दी, नागरी, गोरक्षा के साथ आती है, तो कभी आर्य समाज के संस्कृति को प्रचारित करने के नाम पर तो कभी 'मलेच्छ' संस्कृति से रक्षा के नाम पर|

"आर्य सभा अब कीजिये ऐसै कछु उपाय

यह मलेच्छिनी दूर हो उन्नति हिन्द दिखाय|"[34]

लेकिन इन सभी विचारों-बातों का लब्बोलुवाब यही था कि मुसलमानों से कैसे भारतवर्ष की हिन्दू संस्कृति की रक्षा की जाये | हिन्दी आंदोलन के कार्यकर्ता आंदोलन के दौरान 'हिन्दी-हिन्दू-हिंदुस्तान' के सांस्कृतिक बोध के जरिए सांप्रदायिकता की आग को भड़का रहे थे जिसकी छाप हिन्दी आंदोलन से संबंधित कविताओं में स्पष्ट रूप से दिखाई देती है | सांप्रदायिकता जब संस्कृति की खाल ओढ़ लेती है तब वह अपनी संस्कृति की तुलना में दूसरों की संस्कृति को हमेशा हीन दृष्टि से देखती है| अपने-अपने धर्म, समुदाय, संस्कृति को लेकर श्रेष्ठता का बोध हिन्दी आंदोलन के दौरान हिन्दू-मुस्लिम दोनों समुदायों में मौजूद था| यह श्रेष्ठता बोध हिन्दू-मुस्लिम दोनों समुदायों को अलग-अलग रास्तों पर ले गया| यह अलगाववाद हिन्दी आंदोलन की ऐतिहासिक कमजोरी है जिससे अनजान बने रहकर हिन्दी आंदोलन का अध्ययन करना एक बड़ी भूल होगी|

संदर्भ सूची

1. भारतेन्दु हरिश्चंद्र और हिन्दी नवजागरण की समस्या, रामविलास शर्मा, राजकमल प्रकाशन,पुनःमुद्रण-2008, पृ॰संख्या-155
2. नागरीप्रचारिणी सभा, पत्रिका के तीसरे भाग की पहली संख्या में,काशी पृ॰संख्या-12-16
3. भारत जीवन पत्रिका,23 अगस्त 1886,सधोगिरी ज्ञानपुर मिर्ज़ापुर, पृ.संख्या-6
4. हिन्दी प्रदीप, अक्टूबर 1889,संपादक-बलकृष्ण भट्ट,पृ.संख्या-21-22
5. नागरीप्रचारिणी सभा, पत्रिका के तीसरे भाग की पहली संख्या में, पृ.संख्या-12-16
6. रस्साकशी ,वीर भारत तलवार, सारांश प्रकाशन,वर्ष-2002, पृ.संख्या 254
७. हिन्दी प्रदीप,श्रीधर पाठक की कविता से, मार्च-1889, पृ.संख्या-7-8
8. भारतेन्दु का बलिया व्याख्यान,सामाजिक क्रांति के दस्तावेज़ संपादक-शम्भूनाथ,भाग-1,वाणी प्रकाशन, दिल्ली,पृ. संख्या-394

9. प्रताप नारायनमिश्र ग्रंथावली संपादक-विजयशंकर मल्ल,नागरी प्रचारिणी सभा,1992,काशी, पृ.संख्या-95

10. महावीर प्रसाद द्ववेदी और हिन्दी नवजागरण, रमविलास शर्मा, राजकमल प्रकाशन, पुनः मुद्रण-2008, पृ.संख्या-

11. रस्साकशी,वीर भारत तलवार, पृ.संख्या-313

12. हिन्दी प्रदीप ,दिसम्बर 1884, vol॰8,no॰4,पृ.संख्या-6

13. हिन्दी प्रदीप,श्रेधर पाठक ,अक्टूबर 1884, पृ.संख्या-7-8

14. हिन्दी प्रदीप, संख्या-1,2, खंड-1 से ,भारतेन्दु द्वारा दिये गए हिन्दी की उन्नति पर दिये गए व्यखायान से

15. वही ,हिन्दी की उन्नति से

16. उर्दू का स्यापा,भारतेन्दु हरिश्चंद्र, हरिश्चंद्र चंद्रिका के जून 1874 में प्रकाशित

17. भारतेन्दु हरिश्चंद्र और हिन्दी नवजागरण की समस्या, रामविलास शर्मा ,पृ.संख्या-60

18. हिन्दी प्रदीप, भारतेन्दु द्वारा दिये गए हिन्दी की उन्नति पर व्याख्यान से,

19. भारत जीवन, अगस्त 1884, शिवराम पाण्ड्या, पृ.संख्या-6

20. भारत जीवन, 23 अगस्त 1886, पृ.संख्या-6

21. रस्साकशी,वीर भारत तलवार, पृ.संख्या-262

22. हिन्दी प्रदीप, वर्ष 1900 जनवरी,फरवरी, मार्च, अंक, जिल्द-23,

23. भारत जीवन,1 फरवरी 1886,पृ.संख्या-6

24. भारत जीवन,सोहन प्रसाद मुद्दरिस ,11 अगस्त 1884

25. भारत जीवन, शिवराम पाण्ड्या, 1 अगस्त 1884,पृ.संख्या-5

26. भारत जीवन,मन्निलाल, अंक-26, 25 अगस्त 1884,पृ.संख्या-5

27. रस्साकशी, वीर भारत तलवार, पृ.संख्या-290

28. वही,पृ.संख्या-290

29. भारत जीवन, 1 फरवरी 1886, पृ.संख्या-6

30. हिन्दी प्रदीप, भारतेन्दु द्वारा हिन्दी की उन्नति पर दिये गए व्याख्यान से

31. वही, हिन्दी की उन्नति पर व्याख्यान

32. भारतेन्दु का बलिया व्याख्यान, सामाजिक क्रांति के दस्तावेज़, पृ.संख्या-393

33. वही ,पृ.संख्या-393

34. भारत जीवन,23 अगस्त 1886,पृ.संख्या-6

उपसंहार

उपसंहार

19वीं सदी के इतिहास में '1857 का गदर' एवं 1885 में 'काँग्रेस का गठन' दो ऐसी महत्वपूर्ण घटनाएं थीं जिसने हिंदुस्तान के इतिहास को खासा प्रभावित किया| 1857 के गदर में हिंदुओं-मुसलमानों ने एक होकर ब्रिटिश शासन के खिलाफ विद्रोह के बिगुल को आवाज दी थी | वही मुस्लिम समुदाय 1885 में काँग्रेस के गठन के समय अलगाव का रास्ता अख़्तियार कर लेता है जिसमें अधिकतर भद्रवर्गीय मुसलमान थे| हिन्दी आंदोलन का उदय इन्हीं दो महत्वपूर्ण घटनाओं के बीच सन 1867 में राजा शिवप्रसाद द्वारा अँग्रेजी सरकार को नागरी के पक्ष में दिये गए मेमोरेंडम से होता है| इस मेमोरेंडम में यह अनुरोध किया गया था कि आदालतों में उर्दू के स्थान पर नागरी लिपि की हिन्दी होनी चाहिए| इस मेमोरेंडम के देने से पहले भी पश्चिमोत्तर प्रांत में हिन्दी-उर्दू का विवाद और आपसी असंतोष सतह के नीचे सन 1837 के बाद से निर्मित होने लगा था| सन 1837 में पश्चिमोत्तर प्रांत में आदालतों की स्थानीय भाषा उर्दू कर दी गई जिसका सीधा प्रभाव हिन्दू समुदाय के लोगों के ऊपर पड़ा| फलस्वरूप हिन्दू समुदाय में ही कायस्थ जीविकोपार्जन और मान-मर्यादा हेतु उर्दू सीखने लगें| 1840 के दशक में उर्दू सीखे लोग समाज में शिक्षित माने जाते थे| हिन्दू या मुस्लिम समुदाय में उर्दू सीखने का सबसे बड़ा कारण था उर्दू से मिलने वाली सरकारी नौकरियाँ|

19वीं सदी में भाषा-लिपि विवाद ने हिन्दू-मुस्लिम भद्रवर्ग के बीच एक विभाजन रेखा खींच दी| भाषा-लिपि के संदर्भ में सवाल यह था कि प्रांत की निचली अदालतों में फारसी लिपि में लिखी जाने वाली उर्दू भाषा का प्रयोग किया जाए या देवनागरी लिपि में लिखी जाने वाली हिन्दी भाषा का| यदि फारसी लिपि में लिखी

जाने वाली उर्दू को अपनाया जाता तो उर्दू भाषी आभिजात वर्ग को लाभ होता जिसमें अधिकतर मुस्लिम थे और वहीं देवनागरी लिपि में लिखी जाने वाली हिन्दी को अपनाया जाता तो हिन्दी भाषी आभिजात वर्ग को लाभ होता जिसमें अधिकतर हिन्दू थे| 1867 में हिन्दी या नागरी की मांग को लेकर चलने वाली राजनीतिक बहसों का अगर सीधा अर्थ निकाला जाए तो यही कहा जा सकता है कि आदालतों मे मुसलमानों के वर्चस्व को कम करने के लिए हिन्दू समुदाय अँग्रेजी शासन से नागरी की वकालत कर रहा था | नागरी-प्रस्ताव ने हिन्दू आभिजात वर्ग और मुस्लिम आभिजात वर्ग में बहुत अधिक कड़ुवाहट पैदा की जो अंग्रेज़ शासित हिंदुस्तान में सांप्रदायिकता के उद्भव का एक महत्वपूर्ण कारण बना| 19वीं सदी के प्रारम्भ में अँग्रेजी सरकार जिस ढंग की भाषा नीति को अपना रही थी उसमें हिन्दू-मुस्लिम अलगाव की जमीन ही तैयार हो रही थी | अँग्रेजी सरकार फोर्ट विलियम कॉलेज, कलकत्ता में एक ऐसे षड्यंत्र को रच रही थी जहां देवनागरी लिपि में लिखी जाने वाली हिन्दी भाषा को संस्कृतनिष्ठ बनाने की कोशिश की गई जो आम हिन्दुस्तानी ज़बान से काफी अलग थी| सस्कृतनिष्ठ हिन्दी और आम फहम हिन्दी जो पश्चिमोत्तर प्रांत में बोली जाती थी उसका विवाद पूरे स्वाधीनता आंदोलन के दौरान चलता रहा और हिंदुस्तान के विभाजन का कारण भी बना जिसका बीज 19वीं सदी के हिन्दी आंदोलन में मौजूद था|

सरकारी नौकरियों में हिंदुओं की बढ़ती हिस्सेदारी ने पुराने शक्ति समीकरण को बदलने का काम किया जिसमें मुस्लिम समुदाय बड़े भाई की भूमिका में था| लिहाजा भाषा-लिपि का मुद्दा दोनों समुदायों के बीच आपसी प्रतिस्पर्धा के मुद्दे बन गए और उनकी धार्मिक अस्मिता के प्रतीक भी बन गए| हिन्दी आंदोलन के दौरान हिन्दी को

हिन्दुत्व का प्रतीक बनाकर पश्चिमोत्तर प्रांत में प्रचारित-प्रसारित किया गया जिसके पीछे कारण था हिन्दीभाषी समुदाय को एक राजनीतिक समुदाय में बदला जाए| हिंदीभाषी समुदाय को राजनीतिक समुदाय में बदलने के लिए ही हिन्दी आंदोलन के साथ गोरक्षा और हिन्दू राष्ट्र जैसे भावनात्मक प्रतीकों को जोड़ा गया| यह स्पष्ट है कि किसी भी जाति या समुदाय की चेतना के निर्माण में धर्म की महत्वपूर्ण भूमिका होती है लेकिन 19वीं सदी के हिन्दी आंदोलन में धर्म का उपयोग हिन्दू-मुस्लिम के बीच सांप्रदायिकता और अलगावद को बढ़ाने के लिए किया जाने लगा| हिन्दी आंदोलन ने हिन्दू राष्ट्रवाद की धारणा को काफी तरज़ीह दी जिसके फलस्वरूप मुस्लिम समुदाय अपनी धार्मिक, सांस्कृतिक भिन्नता के कारण अलग-थलग महसूस करने लगा और उसके सरोकार हिन्दी आंदोलन से नहीं जुड पाये| हिन्दी आंदोलन के आंदोलनकारियों ने मुस्लिम समुदाय के साथ मिलकर कोई साझी संस्कृति नहीं विकसित की बल्कि अपनी कविताओं, लेखों के माध्यम से मुस्लिम समुदाय को हिन्दू समुदाय से हीन और कमतर बताया| हिन्दी आंदोलन हिन्दू-मुस्लिम विवाद में इस तरह उलझता चला गया कि उसे धार्मिक-सामाजिक सवाल दिखाई ही नहीं दिये| यही कारण रहा कि पश्चिमोत्तर प्रांत में जातीय चेतना का विकास न तो राष्ट्र के स्तर पर हो पाया न ही भाषा के स्तर पर| सन 1900 में नागरी को आदालत की भाषा के रूप में स्वीकृति मिलने के बावजूद हिन्दी का सवाल स्वाधीनता आंदोलन तक अपने ढंग से बना ही रहा|

हिन्दी की लिपि नागरी है और उर्दू की फारसी है इससे आम आदमी का संबंध कम ही जुड़ पाया | वह अपने रोज़मर्रा के जीवन को अपनी आम

बोलचाल की बोली या भाषा में ही जीता रहा जिसमें हिन्दी-उर्दू के शब्द एक साथ आते रहें हैं| 19वीं सदी के हिन्दी आंदोलन के दौरान भाषा-लिपि के विवाद में सबसे अधिक नुकसान आम आदमी के गंगा-ज़मुनी तहजीब को ही हुआ जिसमें हिन्दू-मुसलमान सदियों से एक साथ रहते आ रहे थे| भाषा-लिपि के इस विवाद ने हिन्दू-मुस्लिम के बीच की खाई को निश्चित रूप से और ज्यादा बढ़ाया | 19वीं सदी में हिन्दी आंदोलन के दौरान भाषा या लिपि गलत ढंग से 'धर्म और अस्मिता' से जुड़ती चली गयी| ये भावनाएँ हिन्दी-उर्दू भाषा के अन्दर धीरे-धीरे रूढ़ि बनती गयीं और एक स्थिति के बाद दोनों भाषाओं के बीच आपसी सहभाव खत्म हो गया जिसकी अनुगूँज आज भी सुनी जा सकती है|

आज के दौर में हिन्दी आंदोलन की प्रासंगिकता क्या है? जैसे सवाल के संदर्भ में यही कहा जा सकता है कि भाषाओं का संघर्ष आज भी जारी है | लेकिन उसका अर्थ यह नहीं हो जाता कि कोई भी भाषा किसी दूसरी भाषा की शत्रु हो जाए |ऐसा भी नहीं हो सकता है कि धार्मिक, सांस्कृतिक भिन्नता के कारण किसी भी भाषा का शब्द भंडार अपवित्र हो जाए जैसा कि हिन्दी आंदोलन के दौरान हुआ| भाषा की प्रकृति ही होती है कि वह दूसरी भाषाओं के संपर्क से खुद को विकसित और सृजनशील बनाती है| आज जब हिन्दू राष्ट्रवाद व सांस्कृतिक राष्ट्रवाद के खतरे मंडरा रहे हैं तब 19वीं सदी के हिन्दी आंदोलन को आलोचनात्मक नजरिए से जानना- समझना और भी महत्वपूर्ण हो जाता है| भाषा-लिपि की राजनीति ने हिन्दी प्रदेश की राजनीति की भाषा को ही बदल दिया जिसका अच्छा या बुरा श्रेय हिन्दी आंदोलन को जाता है|

संदर्भ ग्रन्थ-सूची

आधार ग्रन्थ

सहायक ग्रन्थ

आधार ग्रंथ

वीर भारत तलवार, रस्साकशी, सारांश प्रकाशन वर्ष-2002, दिल्ली

1. ब्राह्मण, प्रताप नारायण मिश्र

2. बिहार बंधु (1895)

3. भारत जीवन (1884-1886 तक की फाइल)

4. भारत मित्र (1880-1886 तक की फाइल)

5. रसिक पञ्च,शिवनाथ शर्मा (1895)

6. हिन्दी प्रदीप, बलकृष्ण भट्ट (1877- 1900 तक की फाइल)

संदर्भ ग्रंथ सूची

1. Alok Rai, Hindi Nationalism, Orient Longman, Delhi,2000
2. Cristopher Ronald King, One Language Two Script, Oxford University Press New Delhi, 1992
3. कृपाशंकर सिंह, हिन्दी-उर्दू-हिंदुस्तानी और अँग्रेजी राज, सांप्रदायिकता प्रासंगिक प्रकाशन
3. नत्थन सिंह(संपादक) बालमुकुंद गुप्त ग्रंथावली , हरियाणा साहित्य अकादेमी, चंडीगढ़, 1993
4. भीमराव अंबेडकर, अछूत कौन और कैसे?
5. बंकिमचन्द्र, आनंद मठ, 1922, कोलकाता

6. ब्रजरत्न दास (संपादक), भारतेन्दु हरिश्चंद्र ग्रंथावली, हिन्दी प्रचारक संस्था,वाराणसी ,1992

7. मुरली मनोहर प्रसाद सिंह, हिन्दी उर्दू साझा संस्कृति, नेशनल बूक ट्रस्ट, 2011, दिल्ली

8. रामचंद्रा शुक्ल, हिन्दी साहित्य का इतिहास, नागरी प्रचारिणी सभा, काशी, 22वां संस्करण

9. रामविलास शर्मा, भारत की भाषा समस्या, राजकमल प्रकाशन, 2008, दिल्ली

10. रामविलास शर्मा, भाषा और समाज, राजकमल प्रकाशन, 2008, दिल्ली

11. रामविलस शर्मा,भारतेन्दु युग और हिन्दी भाषा की विकास परंपरा, राजकमल प्रकाशन ,2008,दिल्ली

12. रामविलास शर्मा, भारतेन्दु हरिश्चंद्र और हिन्दी नवजागरण की समस्या, राजकमल प्रकाशन, 2008, दिल्ली

13. रामविलास शर्मा, महावीर प्रसाद दिवेदी और हिन्दी नवजागरण, राजकमल प्रकाशन, 2008,दिल्ली

14. विजयशंकर मल्ल (संपादक) प्रताप नारायण मिश्र ग्रंथावली, नागरी प्रचारिणी सभा, काशी, 1992

15. वीर भारत तलवार, रस्साकशी, सारांश प्रकाशन, 2002, दिल्ली

16. शम्भूनाथ, सामाजिक क्रांति के दस्तावेज़ (भाग-1, 2), वाणी प्रकाशन,दिल्ली

<u>पत्रिकाएँ</u>

1. ब्राह्मण, प्रताप नारायण मिश्र

2. बिहार बंधु (1895)

3. भारत जीवन (1884-1886 तक की फाइल)

4. भारत मित्र (1880-1886 तक की फाइल)

5. रसिक पञ्च,शिवनाथ शर्मा (1895)

6. हिन्दी प्रदीप, बलकृष्ण भट्ट (1877- 1900 तक की फाइल)

परिशिष्ट

उर्दू का स्यापा

है है उर्दू हाय हाय। कहां सिधारी हाय हाय।।

मेरी प्यारी हाय हाय। मुंशी मुल्ला हाय हाय।।

बल्ला बिल्ला हाय हाय। रोय पीटैं हाय हाय।।

टांग घसीटैं हाय हाय। सब छिन सोचैं हाय हाय।।

डाढ़ी नोचैं हाय हाय। दुनिया उलटी हाय हाय।।

रोजी बिलटी हाय हाय। सब मुखतारी हाय हाय।।

किसने मारी हाय हाय। खबर नवीसी हाय हाय।।

दांत पीसी हाय हाय। एडिटर पोशी हाय हाय।।

बात फरोशी हाय हाय। वह लस्सानी हाय हाय।।

चरब जुबानी हाय हाय। शोध बयानी हाय हाय।।

फिर नहिं आनी हाय हाय।।

- भारतेन्दु हरिश्चन्द्र

(हरिश्चन्द्र चन्द्रिका के जून सन 1874 ई. के अंक में प्रकाशित)

हिन्दी की उन्नति पर व्याख्यान

अहो अहो मम प्रान प्रिय आर्य भ्रातृ गन आज।

धन्य दिवस जो यह जुडो हिन्दी हेतु समाज।।1।।

तामें आदर अति दिये मोहिं तुम निज जन जान।

जो बुलवायो मोहिं इत दर्शन हित सन्मान।।2।।

जदपि न मैं जानत कछू सब विधि सों अति दीन।

तदपि भ्रता निज जानिकै सबन Ñपा अति कीन।।3।।

भारत में यह देस धनि जहाँ मिलत सब भ्रता।

निज भाषा हित कटि कसे हम कहं आज लखात।।4।।

निज भाषा उन्नति अहै सब उन्नति को मूल।

बिन निज भाषा ज्ञान के मिटत न हिय को सूल।।5।।

पढ़े संस्Ñत जतन करि पंडित में विख्यात।

पै निज भाषा ज्ञान बिन कहि न सकत एक बात।।6।।

पढ़े फारसी बहुत बिध तौहू भये खराब।

पानी खटिया तर रहो पूत मरे बकि आब।।7।।

अंग्रेजी पढ़ि के जदपि सब गुन होत प्रवीन।

पै निज भाषा ज्ञान बिन रहत हीन के हीन।।8।।

यह सब भाषा यह सब भाषा काम की जब लौं बाहर बास।

घर भीतर नहिं कर सकत इन सों बुद्धि प्रकास।।9।।

नारि पुत्र नहिं समझहीं कुछ इन भाषन माहिं।

तासों इन भाषन सो काम चलत कछु नाहिं।।10।।

उन्नति पूरी है तबहि जब घर उन्नति होय।

निज सरीर उन्नति किए रहत मूढ सब लोय।।11।।

पिता बिबिध भाषा पढ़े पुत्र न जानत एक।

तासों दोउन मध्य में रहत प्रेम अविवेक।।12।।

अंग्रेजी निज नारि को कोउ न सकत पढाइ।

नारि पढ़े बिन एक हू काज न चलत लखाइ।।3।।

कुरु सिखवत बहु भांति लों जदपि बालकन ज्ञान।

पै माता शिक्षा सरिस, होत तौन नहिं ज्ञान।।14।।

जब अति कोमल जिय रहत तब बालक तुतरात।

भूलत नहिं सो बात जो तबै सिखाई जात।।15।।

भूलि जात बहुत बात जो जोबन सीखत लोय।

पै भूलत नहिं बालकन सीख्यो सुनो जो होय।।16।।

जिमि लै कांची मृत्तिका सब कछु सकत बनाय।

पै न पकाए पर चलत तामें कछू उपाय।।17।।

कांचे पर तासों बनत जो कछु सो रह जात।

चिन्ह सदा तिमि बाल सिसु शिक्षा नाहिं भुलात।।18।।

सो सिसु शिक्षा मातु बस जो करि पुत्रहि प्यार।

खान पान खेलन समय सकत सिखाय बिचार।।19।।

लाल पुत्र करि चूमि मुख बिबिध प्रकार खेलाइ।

माता सब कछु पुत्र को सहजहिं सकत दिखाइ।।20।।

सो माता हिन्दी बिना कछु नहिं जानत और।

तासों निज भाषा अहै, सबही की सिरमौर।।21।।

पढ़ो लिखो कोउ लाख बिध भाषा बहुत प्रकार।

पै जबही कछु सोचिहो निज भाषा अनुसार।।22।।

सुत सों तिय सों मीत सों भृत्यन सो दिन रात।

जो भाषा मधि कीजिये निज मन की बहु बात।।23।।

ता की उन्नति के दिये सब विधि मिटत कलेस।

जामे सहजहि देस कौ इन सब को उपदेश।।24।।

जधपि बाहर के जनन गुन सों देत रिझाय।

पै निज घर के लोग कहं सकत नाहिं समझाया।।25।।

बाहर तो अति चतुर बनि कीनो जगत प्रबन्ध।

पै घर को व्यवहार सब रहत अन्ध को अन्ध।।26।।

कै पहिने पतलून कै भये मौलबी खास।

पै तिय सके रिझाय नहिं जो गृहस्थ सुख बास।।27।।

इनकी सो अति चतुरता तिनको नाहिं सुहात।

ताही सों प्राचीन कवि कही भली यह बात।।28।।

खसम जो पूजै देहरा भूत पूजनी जोय।

एकै घर में दो मता कुशल कहाँ से होय।।29।।

तासों जब सब होहिं घर विधा बुद्धि निधान।

होइ सकत उन्नति तबै और उपाय न आन।।30।।

निज भाषा उन्नति बिना कबहुं न वैहै सोय।

लाख अनेक उपाय यों भले करो किन कोय।।31।।

इक भाषा, इक जीव इक मति सब घर के लोग।

तबै बनत है सबन सों मिटत मूढता सोग।।32।।

और एक अति लाभ यह यामें प्रकट लखात।

निज भाषा में कीजिये जो विधा की बात।।33।।

तेहि सुनि पावैं लाभ सब बात सुनै जो कोय।

यह गुन भाषा और महं कबहुं नाही होय।।34।।

लखहु न अंगरेजन करी उन्नति भाषा मांहिं।

सब विधा के ग्रन्थ अंगरेजिन मांह लखाहिं।।35।।

शब्द बहुत परदेश के उच्चारनहु न ठीक।

लिखत कछू पढि जात कछु सब बिधि परम अलीक।।36।।

पै निज भाषा जानि तेहि तजत नहीं अंगरेज।

दिन दिन याही को करत उन्नति पै अति तेज।।37।।

बिबिध कला शिक्षा अमित ज्ञान अनेक प्रकार।

सब देसन से लै करहु भाषा मांहिं प्रचार।।38।।

जहाँ जौन को गुन लहो लियो जहाँ सो तौन।

ताहीं सों अंगरेज अब सब बिधा के भौन।।39।।

पढि बिदेस भाषा लहत सकल बुद्धि को स्वाद।

पै कृतकृत्य न होत ये बिन कछु करि अनुवाद।।40।।

तुलसी कृत रामायनहु पढ़त जबै चित लाय।

तब ताको आसय लिखत भाषा मांहिं बनाय।।41।।

तासों सबहीं भांति है इनकी उन्नति आज।

एकहि भाषा मंह अहै जिनकी सकल समाज ।।42।।

धर्म जुद्ध विधा कला गीत काव्य अरु ज्ञान।

सबके समझन जोग है भाषा मांहिं समान ।।43।।

भारत में सब भिनन अति ताही सों उत्पात।

बिबिध देस मतहू बिबिध भाषा बिबिध लखात।।44।।

सौंप्यौं ब्राह्मान को धरम तेई जानत वेद।

तासों निज मत को लहो कोऊ कबहुं न भेद।।45।।

तिन जो भाष्यो सोइ कियो अनुचित जदपि लखात।

सपनहुँ नहिं जानी कछू अपने मत की बात।।46।।

पढ़े संस्कृत बहुत बिध अंगरेजी हू आप।

भाषा चतुर नहीं भये हिय को मिटलो न ताप।।47।।

तिमि जग शिष्टाचार सब मौलवियन आधीन।

तन सों सीखे बिनु रहत भये दीन के दीन।।48।।

बैठनि बोलनि उठनि पुनि हंसनि मिलनि बतरान।

बिन पारसी न आवही यह जिय निश्चय जान।।49।।

तिमि जग की विधा सकल अंगरेजी आधीन।

सबै जानि ताके बिना रहै दीन के दीन।।50।।

करत बहुत बिधि चतुरई तऊ न कछू लखात।

नहिं कछु जानत तार में खबर कौन बिधि जात।।51।।

रेल चलत केहि भांति सों कल है काको नांव।

तोप चलावत किमि सबै जारि सकल जो गांव।।52।।

वस्त्र बनत केहि भांति सों कागज केहि बिधि होत।

काहि कबाइद कहत हैं बांधत किमि जल सो।।53।।

तुरन्त फोटोग्राफ किमि छिन मंह छाया रूप।

होय मनुष्यहि क्यों भये हम गुलाम ये भूप।।54।।

यह सब अंगरेजी पढ़े बिनु नहिं जान्यो जात।

तासों याको भेद नहिं साधारनहिं लखात।।55।।

बिना पढ़े अब या समै चलै न कोउ बिधि काज।

दिन दिन छीजत जात है या सों आर्य्य समाज।।56।।

कल के कल बल छलन सों छले इते के लोग।

नित नित धन सों घटत हैं बाढ़त है दु:ख सोग।।57।।

मारकीन मलमल बिना चलत कछू नहिं काम।

परदेसी जुलहान कै मानहु भये गुलाम।।58।।

वस्त्र कांच गागज कलम चित्रा खिलौने आदि।

आवत सब परदेस सों नितहि जहाजन लादि।।59।।

इत की रूई सींग अरु चरमहि तित लै जाय।

ताहि स्वच्छ करि वस्तु बहु भेजत ग्रहि बनाय।।60।।

तिनही को हम पाइकै साजत निज आमोद।

तिन बिन छिन तृन सकल सुख, स्वाद बिनोद प्रमोद।।61।।

कछु तो बेतन में गयो कछुक राज कर माहिं।

बाकी सब कला व्यौहार में गयो रंोकछु नाहिं।।62।।

निरधन दिन दिन होत है भारत भुव सब भांति।

ताहि बचाइ न कोउ सकत निज भुज बुधि बल कांति।।63।।

यह सब अधीन है तामे इतै न ग्रन्थ।

तासों सूझत नाहिं कछु द्रव्य बचावन पन्थ।।64।।

अंगरेजी पहिले पढ़ै पुनि विलायतहि जाय।

या विधा को भेद सब तो कछु ताहि लखाय।।65।।

सो तो केवल पढन में गई जवानी बीति।

तब आगे का करि सकत होइ बिरध गहि नीति।।66।।

तैसहि भोगत दंड बहु बिनु जाने कानून।

सहत पुलिस की ताड़ना देत एक करि दून।।67।।

पै सब बिघ की कहूं होइ जु पै अनुवाद।

निज भाषा महं तो सबै याको लहै सवाद।।68।।

जानि सकैं सब कछु सबहि बिबिध कला के भेद।

बनै बस्तु कल की इतै मिटै दीनता भेद।।69।।

राजनीति समझैं सकल पावहिं तत्व बिचार।

पहिचानै निज धरम को जानैं शिष्टाचार।।70।।

दूजे के नहिं बस रहैं सीखै बिबिध विवेक।

होइ मुक्त दोउ जगत के भोगैं भोग अनेक।।71।।

तासों सब मिलि छांडि कै दूज और उपाय।

उन्नति भाषा की करहु अहो भ्रात गन आय।।72।।

बच्यौ तनिकहू समय नहिं तासो करहु न ढेर।

औसर चूके व्यर्थ की सोच करहुगे फेर।।73।।

प्रचलित करहु जहान में निज भाषा करि जत्र।

राज काज दरबार में फैलाबहु यह रत्र।।74।।

भाषा सोधहु आपनी होइ सबै एकत्र।

पढ़हु पढ़ावहु लिखहु मिलि छपवावहु कछु पत्र।।75।।

बैर बिरोधहि छोडि कै एक जीव सब होय।

करहु जतन उद्धार को मिलि भाई सब कोय।।76।।

आल्हा बिरहहु को भयो अंगरेजी अनुवाद।

यह लखि लाज न आवई तुमहिं न होत बिखाद।।77।।

अंगरेजी अरु फारसी अरबी संस्कृत ढेर।

खुले खजाने तिनहिं क्यों लूटत लावहु देर।।78।।

सबको सार निकाल कै पुस्तक रचहु बनाइ।

छोटी बड़ी अनेक बिध बिबिध विषय की लाइ।।79।।

मेटहु तम अज्ञान को सुखी होहु सब कोय।

बाल वृद्ध नर नारि सब बिधा संजुत होय।।80।।

फूट बैर को दूरि करि बांध कमर मजबू।

भारत माता के बनो भ्राता पूत सपूत।।81।।

देव पितर सबही दुखी कषिटत भारत माय।

दीन दसा निज सुतन की तिनसो लखी न जाय।।82।।

कब लौं दु:ख सहिहौ सबै रहिहौ बने गुलाम।

पाइ मूढ कालो अरध सिक्षित काफिर नाम।।83।।

बिना एक जिय के भये चलिहै अब नहिं काम।

तासो कारो ज्ञान तजि उठहु छोडि बिसराम।।84।।

लखहु काल का जग करत सोवहु अब तुम नाहिं।

अब कैसा आयो समय होत कहा जग माहिं।।85।।

बढ़न चहत आगे सबै जग की जेती जाति।

बल बुधि धन विज्ञान में तुम कह अबहुं राति।।86।।

लखहु एक कैसे सबै मुसलमान क्रिस्तान।

हाय फूट इक हमहिं में कारन परत न जान।।87।।

बैर फूट ही सों भयो सब भारत को नास।

तबहु न छांड़त याहि सब बंधे मोह के फांस।।88।।

छोड़हु स्वारथ बात सब उठहु एक चित होय।

मिलहु कमर कसि भ्रातगन पावहु सुख दु:ख खोय।।89।।

बीती अब दु:ख की निसा देखहु भयो प्रभात।

उठहु हाथ मुंह धोइ कै बांधहु परिकर भ्रात।।90।।

या दु:ख सों मरने भलो, धिग जीवन बिन मान।

तासों सब मिलि अब करहु बेगहि ज्ञान विधान।।91।।

कोरी बातन काम कछु चहिहै नाहिंन मीत।

तासों उठि मिलि कैं करहु बेग परस्पर प्रीत।।92।।

परदेसी की बुद्धि अरु वस्तुन की करि आस।

परबस ह्वै कब लौं कहो रहिहौ तुम ह्वै दास।।93।।

काम खिताब किताब सौं अब नहिं सरिहै मीत।

तासों उठहु सिताब अब छांडि सकल भय भीत।।94।।

निज भाषा, निज धरम निज मान करम व्यौहार।

सबै बढ़ावहु बेगि मिलि कहत पुकार पुकार।।95।।

लखहु उदित पूरब भयो भारत भानु प्रकास।

उठहु खिलावहु हिय कमल करहु तिमिर दु:ख नास।।96।।

करहु बिलम्ब न भ्रात अब उठहु मिलावहु सूल।

निज भाषा उन्नति करहु प्रथम सो सब को मूल।।97।।

लहहु आर्य्य भ्राता सबै बिधा बल बुधि ज्ञान।

मेटि परस्पर द्रोह मिलि हाहु सबै गुन खान।।98।।

(नागरी प्रचारिणी सभा, काशी द्वारा पुस्तकाकार प्रकाशित। भारतेन्दु ने यह कविता जून सन 1877 ई. की हिन्दीवर्धिनी सभा में पढ़ा था जो हिन्दी प्रदीप खंड-1, संख्या 1-2 में प्रकाशित हुई थी। चूंकि यह कविता सभा में पढ़ी गई थी, इसलिए इसे व्याख्यान नाम दिया गया है।)

अजी साहब बड़ी दिल्लगी रही !! (इंद्रसभा)

हम तो आप जानते हैं की अपनी खामों-ख़म में हमेशा मस्त रहते हौं ,हौं कल रात को एक जलसे मे पहुचे हालाँकि उब हो रहा था। जलसा क्या था इन्दर सभा थी । कैफियत ब्यान करना ताकत से वइद है। बड़ी-बड़ी परीज़ाद नाजनीन और बड़े बड़े माहरु गुलबदन रौनक अफ़रोज थे तमाशबिना में बस हम सरीखे अफीमची सैकड़ों दिखाई देते थे – मगर अफ़सोस चंद अर्से में वहाँ कुछ और का और ही हो गया – बड़ा लड़ाई झगड़ा मचा और लगे चपत औल होने लेकिन जब एक काला मुस्टंडा दाढ़ी में ढाता बंधे हुए एक कंधे पर जनेऊ और एक कंधे पर चाम के फीते मे मनीबैग सा लटकाए हुए एक हाथ मे शराब की बोतल लिए झूमता हुआ जलसे के दरमियान आन पहुँचा यकीनन समझिए आधी से जियादा मजलिस भाग गयी – पर यार लोग कहाँ हटने वाले थे – वही दीवट हो डेट रहे – इस गद-बाद को देख एक बुडढा जिसकी उम्र अस्सी से कम न होगी कापता हुआ लड़खड़ाता जबान से यों रोने लगा (सच कहता हु मुझे बड़ा रहम आया क्यूंकि यह बुडढा "हिंदुस्तान" था)

बुड़ढा हिंदुस्तान – मेरी जन अब तो मुसीबत मे कामिल

फसी है फसी है फसी है फसी है ।

इतने मे वो शराबी मुस्टंड जिसके आने से आदमी भाग गए थे (इसका नाम मक़सुम हिन्द खां खां बहादुर B.B.I.C.I बजाई था)

मकसुम हिंदुस्तान –यह सुन करके मुझको यकीनन समझना

ख़ुशी है ख़ुशी है ख़ुशी है ख़ुशी है । हा!हा!हा!

और बोतल से पीकर कूद–कूद कर नाचने लगा।

हिन्दी – इस पर एक औरत जो बेवा का लिबास पहने हुए तड़प के बोल उठी उसका नाम हिन्दी था ।

हिन्दी –अरे दुस्त मकसुम मन मे तेरे क्या वसी है

वसी है वसी है वसी है ।

अरे संग दिल क्यों भारत खंड भर की कमर अपने पंजे में तूने गसी है।

यह औरत कुछ और कहना चाहती थी , लेकिन एक बढ़िया पो शीशा और जेवर से जगमगाती हुई नाजनीन ने आकर उसका गला भींच लिया और लगी गुस्सा झाड़ने (यह मक़सुम की प्यारी बीवी उर्दू थी)

उर्दू – यह कौन गुस्ताख़ लौंडी है जो इसदम ! मकां में बेइजाजत घुसी है। निकालो इस ऐ मेरे कामदारों, अभी इस्को करना मुझे तसनसी है बदजात हरमजादी कही की

(और कहते-कहते गरदनी दे ऐसा धक्का मारा की हिन्दी बिचारी आहि-आहिकरती फर्श पर औंधे मुंह गिर पड़ी)

इस माजरे को देख एक मेम साहिबा जिनके चेहरे पर विद्या की रौशनी झलकती थी और मिइबार्नी बूंदों –बूंदों टपकती थी , आकर यौं समझाने लगी (इसका नाम अंग्रेजी था)

अंग्रेजी- " नहीं है मुनासिब तुम्हें ऐसे लड़ना

बड़ी इसमे होती तुम्हारी हंसी है

लड़ाई को छोड़ो रहो प्यार से

तुम नहीं फ़ैज़ है ये वरन कुशी है

-छिः छिः तुम्हें ऐसे रहना चाहिए ? क्या बहनों के बीच यह बर्ताव होना अच्छा लगता है ?

उठो प्यारी हिन्दी और उर्दू से हाथ मिलाओ – जो हुआ सो हुआ – (हाथ पकड़ के उठती है)

हिन्दी –(फर्श पर पालथी मारके बैठ कर अंग्रेजी से आह भर कर)

"अजी मैं क्या करूँ मैं तो चुप ही रही हूँ

इसी ने कमर मेरे ऊपर कसी है।

यह नागिन है इसका जहर है रसीला

सभों की सरल बूढी इसने डँसी है

प्रजा भारती को ये दे करके झांसा

कचहरी मे देखो सरासर घुसी है।

करै है दुराचार नित दिन अनेकों

कुटिलता जगत भर को इसमे ठुसी है ।

हमारी भला क्या चलै इसके आगे

मददगार इसके ऊपर फारसी है ।

अगर आप मुझसे न हुजै खफा तो

भुलाया है हमको तो खुद आपने भी

अजब क्या जो होती हमारी हंसी है ।

भला आप कहिए भला कैसे होगा

बहरहाल जब सख्त ये बेकसी है ।

नहीं है सगा अपना कोई भी अब तो

नहीं हिंदुओं में कोई साहसी है ।

जिसे देखिये दरबदर इश्क उर्दू

जिहालत को लेकर पड़ा आलसी है ।

इन्हि हिंदुओं का भला सोच ने की

फिकर मे मेरी उम्र सारी खपी है ।

मगर ये रहें वेही कोदन के कोदन

सभो की समझ है ऐसी घिसी है ।

नहीं देख सकी मैं इनकी बुराई

ये आदत मेरे दिल में कुछ आबसी है ।

दुखी देख भारत को जलता कलेजा

मगर बस नहीं क्या करूँ बेबसी है ।

(और जार –जार रोने लगती है)

मक़सूम हिन्द खाँ बहादुर तो मेम साहिब के आते ही कूदना फादना भूल गए थे , बोतल उनके हाथ से गिरि नशा उतार गया था , बदन कापने लगा था और दोनों हाथों को बांध बड़ी अजीजी के साथ सिर नीचा किया एक कोने

में जा खड़े हुए थे – लेकिन जब हिन्दी की स्पीच खतम हुई और रोना शुरू हुआ उक्त मेम साहिबा से भी न रहा गया आँखों में आँसू भारत हो आए और बड़े क्रोध से अब ये चाबुक लेकर मक़सूम की तरफ चली उस वक़्त बाद में ऐसी बिजली चमकी और साथ ही ऐसी भयंकर घोर गर्जना की मैं चारपाई पर लिटरेली चौंक पड़ा और देखता हूँ तो अपने कमरे के आगे की खुली छत का माहौल अपना उदार कार्य कर रही है ।

श्रीधर पाठक

मार्च -१८८४

हिन्दी प्रदीप

पृष्ठ सं -७-८

सुनो कोऊ हिन्दी हूँ की टेर

हीन छीन अति दीन दुखित मन भ्रमति दैव के फेर।

गली गली टकराति अनादृत घरे बोझ सिर ढेर।

द्वै कौडिहु कोउ कदर करत नहिं देत न धीरज हेर।

जिनके करगत भाग्य हिन्द को जिनके करगत न्याय।

सोइ जब बधिर भये हिन्दी हितकौन रीति दुख जाय।

निपट निवल अस हाय अकेलौ पद पद ठोकर खाय।

फिरो। दैव हत भाग्य भई मैं सुनत न कोऊ हाय।

ठीक ठीक मम काम होत निकसति एक न खोट।

उर्दू करति कछू को कछू तउ ताहि की रक्षा ओट।

नेकहूँ दरद नया नहिं आवति नोचत देह खसोट।

महा निठुरता भरी रात-दिन लगत मर्म थल चोट।

इतने महाराज हिंदूपति राना रवल भूप।

जिनको यश चहुँओर जगत में जग मग जोति अनुप।

तिनहूँ कह उर्दू ही प्यारी नहिं कहू मम सम्मान।

कौन लोक में शरण मिलै मोहि किहि विधि राखहुँ प्रान।

- पं. श्रीधर शर्मा

चाहो गान समझो चाहो रोना समझो

चखे ने करदी है क्या हाल हमारी हाय! हाय!

हो न दुश्मन की भी या रब! ऐसी ख्वारी हाय! हाय!

इल्ली दौलत ताबी ताकत इज्जती खुरमत सभी।।

छोड़कर हमो सुए दीगर सिधारी हाय! हाय!

हिन्द में कोई किसी का हो तो बतला हमनकौ।

उठ गई दुनिया में राही रस्मे यारी हाय! हाय!

होके हिन्दू हिन्दी ही के जब नहीं यह चारसाज

क्या उमैद इनसै है जूज नौ भेदवारी हाय! हाय!

इक में हिन्दी के नहीं अहलें कमीशन देते राय।

छूटै हैं खरगोश पर कुत्ते शिकारी हाय! हाय!

उम्रभर वकफे लकदकी बेजमा रक्खा हमें।

खाक में मिल जाए ऐसी खाकसारी हाय! हाय!

वख्त काफिर नागरी भी छीनती है या खुदा!

थी बुजूर्गो की यही एक पायदारी हाय! हाय!

गमागम खाखा के हम जीते रहे अफसास है

जिन्दगी की क्या हुई ना पारादारी हाय! हाय!

हिन्दुआ गफलत अभारी अहले यूरप खुद गरज

ऐ विरहमन कौन सुनता है हमारी हाय! हाय!

(ब्राह्मण पत्रिका)

18 अप्रैल, 1884

भाग-1

भारत जीवन

हिन्दी की आर्तनाद

गोजर के टँगरी समान उरद है तऊ इज्जत लहत इजलाश मोहि भारी री।

जाके नुरकत पढ़ने में मूक बनिजात केते धोखेबस लबज भूख बाचत विचारी री।।

नागरी हरूफ सीधे लिखे पढ़े जात भले हिन्द में केदार सब जानै नर नारी री।

ताहि को प्रचार न अभागो हिन्दी में अब भारत मझार कौन अधिक दुखारी री।।

अगस्त 1884

हिन्दी प्रदीप

पृ. सं. 20

विपिन लतान में कि कींकर पतान में

टेरि टेरि हारे सब गारत सन्तान तऊ विनती महीप के परी न जाय कान में।

हानि छई भारी सुनीति गई सारी अब नागरी सुदेवन को हीन भई मान में।।

भैरव भूप्रेम घटी नृप को प्रजा की ओर बाधा श्रम प्रापित सांच सुन्दर सुजान में।

कैसी करे कहाँ जाये सो तो बतराओ मीत विपिन लतान में कि कींकर पतान में।।

हिन्दी प्रदीप

अप्रैल 1884

पृ. सं. 11

भारत जीवन

सोहन प्रसाद मुर्दरिस की कविता

हिन्दी बिनु हिन्द विहाल सुनै कोउ नाहीं।

उर्दू बीबी कर जाल बढ़ी जग मांही।।1।।

पृथ्वीराज जयचंद ने विग्रह कीना

तब तुर्क आई के हिन्दी दखल भरलीना

धन धर्म लूटे सब मुददे उपद्रव कीना

भारत वासिन को बहुत दु:ख दीना

जब ते ए देस में आये तुरूक पछाहीं

उर्दू बीबी कर जाल बढ़ी जग माहीं।।

यूनान इराक तुरान के वासी भए

बगदाद अरब गजनी को गारे से छाये

पिरथ में तुरूक को हिन्दू मारि भगाये

फिर तुरूक सम्हर के लड़े जीत तव पाये।

कम छिटिकि रहे भरि हिन्दू बसे अब ठाही

उर्दू बीबी कर जाल बढ़ी जग माही।।2।।

फिर बहुत दिवस को राज हिन्द को कीना

फिरि निकलि गया अंरेज आये के छीना

उर्दू को राज के कारबार सब दीना

हिन्दी की न पूछै बात न्याव नहि कीना

उर्दू बीबी कर जाल।।3।।

नैननते वर्षा होत सोचई मारे

कोई धीरज न नहि देत मेरे बिनदु मारे

कोउ असन हमारी मित्र जो यह दुख हारे

हिन्दी को उबारै उर्दू तुरंत निकारे।।

हिन्दी की सुधि अब होय विकल होई जाही

उर्दू बीबी कर जाल बढ़ी।।4।।

यह देस के सबै नोस नाम के भूप कहावे

हिन्दी के हेतु नहि कछुक उपाय करावे

उनका धन कसवी भांड भगतिये सावे।

अच्छे कामों में दाम न एक लगावै।

यह बड़े शरम की बात उन्हैं श्रम नाही।।

उर्दू बीबी कर जाल।।5।।

चहुओर सोर सब लोग करे दिन राती।

कब दफ्तर हिन्दी होय जुड़ै है छाती।।

उर्दू से अति दूख होत होत नहि नाही जाती।।

दिन रैन चैन नहि पड़त मजा पछताती।

कब गर्वमैन्ट की दृषिट पड़ै एहि माँही।

उर्दू बीबी कर जाल।।6।।

नहीं चहै हिन्द के लोग कोउ एक भाषा

हिन्दी-हिन्दी सबके उर में अभिलाषा।

उर्दू में हजारो हानि लाभ नहि देखा।

जानहि सब सज्जन लोग करै को लेखा।

व्याकुल है आर्ज समाज चले बस नाही।

उर्दू बीबी कर जाल।।7।।

एक भला होइ सब लोग ए हिन्दू भाई।

चल गवर्नमेन्ट को विनै सुनावो जाई

मन साई करो एक काज परम सुखदाई।

उठ गवर्नमेन्ट से कहो छाडि कदराई

सोहन प्रसाद मन विषाद कर पछताहीं।

उर्दू बीबी कर जाल बड़ जग माहीं।।

प्रेरित पत्र

सोहन प्रसाद मुदरिस (पडरी)

जिला गोरखपुर

भाग-1, अंक-24

11 अगस्त, 1884

प्रेरित पत्र

प्यारो हिन्दी को अब तो उबारो ।

सब मिली हिन्दी प्रचारों-प्रचारों ।

अपने लड़कों को हिन्दी पढ़ाओ ।

हिन्दू हो तुम उरदू छुड़ाओ ।

आर्य होकर भी उरदू बढ़ाओ ।

धर्म कर्म वृथा सब गवाओ ।

मेरी विनती को मानो पियारो ।

सब मिली हिन्दी प्रचारों-प्रचारों ।

मातृभाषा है हिन्दी तुम्हारी ।

तुमने क्यों उसकी सुध-बुध विसारी ।

हिन्दी संस्कृत तो बेटी प्यारी ।

निश्चय माता है एही हमारी ।

अपनी माता के दुःख को निहारो ।

सब मिली हिन्दी प्रचारों-प्रचारों ||1||

सब ने सरकार को दुःख सुनाया ।

उसने और हमको इतना सताया |

उर्दू वालों को हर जाँ बढ़ाया |

हिन्दी भक्तो का दर्जा घटाया |

प्यारो इससे न तुम हिम्मत हारो |

सब मिली हिन्दी प्रचारों-प्रचारों ||2||

हमको है ईश्वर का सहारा |

वोही रक्षक है हरदम हमारा |

हमने रो रो के सबको पुकारा |

राजा लोगो ने न नेक निहारा |

तुम भी शिवराम दिल से पुकारो |

सब मिल हिन्दी प्रचारों-प्रचारों ||

पंडित शिवराम पाण्ड्या, इलाहाबाद

पत्रिका-भारत जीवन, पृष्ठ संख्या-5

अंक-1 अगस्त 1884

लावनी

अब जगहु बीरबर भारत बासी कोउ ।

करती विलाप गौ और नागरी दोउ ॥

कोउ भारत बीच न ऐसी सपूत दिखाई ।

जो करै हमारा दुक्ख नाश अब आई ॥

माता-माता कहिके पुजैकोटिन धाई ।

पर यवन फरंगिन से ना लेत बचाई ॥

पढि-पढ़ि पुराण पाषाण बने सब भाई ।

ना मम दुख देखे उन्हें लाज कछु आई ॥

दुख हम दोनों का नाश करौ अब कोऊ ।

करती विलाप गौ और नगरी दोऊ ॥1॥

गो स्वामी जी से मोर प्रार्थना भाई ।

जो स्वामी मोर कहाय करे न सहाई॥

उनही के देखत पकड़त यवन कसाई ।

पर बड़ी लाज की बात न लेत छुड़ाई ॥

क्या हानि नही यह लाभ तुम्हें जिय भाई ।

जो करहूँ न मोर सहाय देखि रह जाई ॥

करी-करी विलाप संताप गाय एजी रोऊ ।

करती विलाप गौ और नागरी दोऊ ||2||

दफ्तर में अमला उर्दू निगोड़ी कारे ।

जो खूबरही बाजाय अभी नक्कारे ||

औगुण उर्दू में येते भरे हा भारे ।

गिनने वाला गिन लेही गगन के तारे ||

यह निश्चय मम जिय भईन कछु शंकारे ।

फटिहे उर्दू का पेट इश जब फारे ||

सर्बदा शिरीपुत रहे न उर्दू कोऊ ।

करती विलाप गौ और नागरी दोऊ ||3||

नागरी परम है स्वच्छ जगत कि प्यारी ।

बलिया में जामेन बंदोबस्त है जारी ||

या के गुण कोऊ करि बखान ना पाई ।

जिही देखे आंखे होति जजरी भाई ||

क्या करिये कछु न बसाय हाय विधना से ।

जो करै न उर्दू फेल नागरी याससे ||

क्या-क्या मै निज दुख कहूँ न सुनता कोऊ |

करती विलाप गौ और नागरी दोऊ ||4||

यह बहता है दर्यायहेम का पानी |

लूटो मिल भारत बंधू कछु ना हानि ||

नागरी कबहूँ ना कबहुँ होयगी रानी |

त से उर्दू को करहु अभी से कानी ||

जा को यश लेना होय करै मोहि रानी |

जामें पय का पय होय रहेना पानी |

कवि सिंह नागरी गौ विलाप कथि सोऊ ||

करती विलाप गौ और नागरी दोउ ||5||

आनंद नगर अर्थात फरुखाबाद वासी

मन्नीलाल चतुर्वेदी (बलिया)

पत्रिका-भारत जीवन

पृष्ट संख्या-5

अंक-26,25 अगस्त 1884

हिन्दुस्तान की चन्द भाषाओं की समालोचना

1.

हिन्दी - हिन्दुओं की जवान बेजान। उर्दू से कटाए कान।

कमर टूटी हुई, लाठी पुरानी हाथ में बेमदद बेआका।

मुसीबत सदा 1 जगह-जगह मारी फिरती है।

2.

उर्दू - शुतर बेमुहाल गर्दन पर लम्बे अचाल। नीम हिन्दू नीम मुसलमान जरा-जरा क्रास्तान कइथो को प्यारी रैयत री जान की हत्यारी बड़ा रुतवा बड़ा जोर। सारे जहान में पड़ा शोरा शाइस्तगी की नाक दुम दूडाक उड़ावे हिन्दुस्तान की ख़ाक।

3.

फारसी - तमीज व शअयत की आरसी। काजी व मुल्लाओं की रोजी। मुसलमानों की फी रेंजी। कायथों की हकी की जबान। जौहरे हिन्दुस्तान। पुरलुतफ किस्से। जो लोटपोट हो जिसो। गुलिस्ताने इशक। वीस्ताने मुशक। अहा खालिक करदी बला अन्दर बलाकरदी।

4.

अरबी बदन में भरी बहुत चरवी। दात तोड़ने गला फोड़ने का नुस्का। बलबलाने में ऊँट कोहरा देती है।

5.

अंगरेजी - बाबू लोगों की ज़बान। जहान करदान सिविलाइजेशन को आ बलन्द रुतवा। बंगालियों को फरोग़। नादिहिन्दों की अकल को दरोग। बहबूदी हिन्दुस्तान पूर करे दिल के अर्मान।

हिन्दी प्रदीप

अक्टूबर 1884

पृ. सं. 21-22

गजल अव्वल

ये जान हिन्दी ऐ जान हिन्दी हमारी प्यारी जबान हिन्दी।।

घी हमको पहले उमेद कामिल ख्याल हंटर को कुछ तो होगा।

मगर वु धोखे की टटटी निकली गँवाया सारा गुमान हिन्दी।।1।।

न हुआ कोई भी पूरा अर्मा वरन गई वो खुंद आप शर्मा।

रही फतहयावी उर्दू ही की हुई मुफत में हैरान हिन्दी।।2।।

कई करोड़ों में है बसते हिन्दू जो मुल्क पंजाबी मगरबी में।

थी सबकी मर्जी अदालतों में ही जारी अब ये ज़बान हिन्दी।।3।।

हुरूफ इस्के हैं साफ इतने नहीं, जरा सी भी हावै गलती।

और समझी जाती है हिन्दी भर में सभीय जाने जहान हिन्दी।।4।।

मगर है उर्दू हीं जिनको प्यारी करेंगे हिन्दी की खूब खारी।

पड़ी है आफत ये आके भारी लबो पै आई है जान हिन्दी।।5।।

ये मुल्क हिन्दुस्तां अब नहीं है अगीची हिन्दी तो हम सहीं है।

मगर य उर्दू के आशंको के रही है फस दर्मियान हिन्दी।।6।।

निकालो उर्दू को जलूद यक हम डरो न हिन्दू जरां भी अब तुम।

हमेशा चमकेगौ यही हर दम, जवां पै सब जबान हिन्दी।।7।।

ऐ जान हिन्दी हिन्दी ऐ जान हिन्दी हमारी प्यारी जबान हिन्दी।।

- श्रीधर पाठक

हिन्दी प्रदीप

अक्टूबर 1884

जिल्द-8, स.2

पृ. सं. 7

गजल दोयम

हिन्दी का अब तो कोई कदरदां रहा नहीं।

बाइस यही है उसका रुतवा जरा नहीं।।

कायथ है जितने मुल्क में पढ़ते हैं फारसी।

हिन्दी का नाम लेना भी उनको खां नहीं।।2।।

शास्तर के रहने वालों को हिन्दी से काम क्या।

भाषा की पोथी पढ़ने से बनना गधा नहीं।।3।।

सब सेठ साहूकारों को पढ़ना हराम है।

नौकर नहीं है होना मुसीबत ज़दा नहीं।।4।।

अंग्रेजी पढ़े बाबू को हिन्दी से क्या गरज़।

इंगिलश की बराबर तो किसी में गिजा नहीं।।5।।

रजवाड़ों का उर्दू ही से चलता है कारोबार।

हिन्दी को दे रिवाज क्यों सिर तो दुखा नहीं।।6।।

सरकार में नहीं है जब इसकी कदर कहीं।

ऐ यारों हिन्दी का पढ़ना वज़ा नहीं।।7।।

इस मुल्क मगरबी व शुमाली के दर्मियान।

लोगों में इत्तिफाक या एका जरा नहीं।।8।।

गाँवों के रहने वालों की हिन्दी ज़बान है।

शायक भी उस्के पढ़ने का उनके सिवा नहीं।।9।।

दिक्कत हजारों सहते हैं उर्दू से ये गरीब।

लेकिन मरज़ की जानते कुछ भी दवा नहीं।।10।।

अफसोस सद अफसोस कि हिन्दू ये वेशुमार।

उर्दू के वद फरेब से करते गिला नहीं।।11।।

हम रोज़ देखते हैं कि हर शहरों मुल्क में।

नेकों के गले करते हैं वद को सजा नहीं।।12।।

खामोश हो खामोश दिलाओ नहीं जवां।

बैठो रहो घरों में ज़माना भला नहीं।।

श्रीधर पाठक

प्र.सं. 7-8

हिन्दी प्रदीप

अक्टूबर 1884

जिल्द-8, स. 2

ग़जल

नाचना बी उर्दू का बीज हिन्दुस्तान के और बयान करना अडवाल अपना साथ दिलचस्प तान के।

श्वौला हूँ भभूका हूँ शरारत से भरी हूँ।

उर्दू है मेरा नाम जवानों में परी हूँ।

हे स्याह मेरा रंग बदलता कभी नहीं।

बहकाने भुलाने में जमाने से खरी हूँ।

ईसा की असल क्या है कि मुझ पर न हो मुश्ताक।

हम शेरा हूँ शैतान की मैं जल्वेगरी हूँ।

अंगरेजी अदालत में मेरा है बड़ा रुतवा।

बतला तो दो भला मैं किसी से भी डरी हूँ।

नाहक की नागरी ने मेरा की थी शिकायत।

हंटर से साहिबो की मैं नस-नस से भरी हूँ।

हिन्दू की हिमाकत से मेरा बस नहीं चलता।

कायथ व मुसलमां पै दिलोजा से भरी हूँ।

फन्दे से मेरे कोई निकलने नहीं पाता।

हर एक को फंसा लेती हूँ मैं जादूगरी हूँ।

हिन्दी कै होश-होश उड़ते हैं एक मेरे नाम से।

जाहिर है मेरा नाम खुद मैं नामवरी हूँ।

पोशीदा मेरा नाच किसी ने नहीं देखा।

मैं स्याह परी स्याह परी स्याह परी हूँ।

हिन्दी प्रदीप

दिसम्बर 1884

Volume 8, No. 4

पृ.सं.-6

लावनी

एक दिन की अनोखी बात बात वह क्या है

बेटे को सिखावे बाप सिखापन क्या है।

नहीं पढ़ो नागरी पुत नागरी क्या है।

साइस्त जवा नहीं इस्त भिस्त डर क्या है।

अब समझ-समझ के कहे नागरी क्या है।

देखौ जौ अनोखे पूत पूत सिख क्या है।

तुम पढ़ा फारसी इल्म इल्म गुन क्या है।

दफ्तर में घुस को ठूस घूम बिन क्या है।

नहीं मिलै रुपैया एक रुपए बिन क्या है।

रुपया सी अनोखी चीज जगत में क्या है।

हो जाती देश कुलनाश फिक्रह में क्या है।

सोवेंगे दुपटटा तान ज्ञान गुण क्या है।

दुनिया का मजा ले लुट लुट धन क्या है।

सब तके हमारी ओर जोर जन क्या है।

कलयुग के कमाऊ यार प्यार ढंग क्या है।

उर्दू है कचहरी बीच पड़ी डर क्या है।।1।।

तुम हरूफ हताला सुनो अर्थ धुन गा दो।

ब्रह्मा औ महाधो विष्णु उधर टकरा दो।

हम लिखे जहाँ फिकवाय वहाँ फुकवा दो।

नहि पकड़ जाउगे कधी नुकम बतला दो।

कोई लिखे किसितयाँ वहाँ कसबियाँ ला दो।

हाकिम के आगाड़ो साफ़ साफ़ पढ़वा दो।

जहाँ छुरी से मरा लिखा छरी सुझवा दो।

टंटो में रुपैया खोंस बरी करवा दो।

क्या करै बड़े मुखतार उन्हें धमका दो।

बोले जू वकीलों आय तनिक धमका दो।

जब बैठे बरिष्टर लोग योग झमका दो।

आलिफ बे ते से ऊपर नुखत सुखत जमका दो।

कोई चतुर मजष्टर होय ताहि भकुवा दो।

मुन्शी और जज्ज की आँख धूल झुकवा दो।

यही भांति राज तुम्हारी है रजा हो क्या है।

उर्दू हे कचहरी बीच पड़ी डर क्या है।।2।।

एक हाथ में कागज लेऊ कलम एक कर में।

गंड घिमन्नी पिछौही चाल लिखौ भर भर में।

पढ़ने में चहै हो ढेर लिखो आतुर में।

चाहे निपट भवरी रहों तबहू चातुर में।

नहीं हरस दिरघ का भेद हरूफ के शर में।

मात्रा का लगाना रोग नहीं घरबर मे।

नुख्ते की जगह दो छोड़ उसे पल भर में।

जब चाहो बना लो जाल बैठ घर-घर में।

तुम उछल कूद बेहुद करो दफ्तर में।

उर्दू की बनाई बात दबै सब तर में।

जारी थी कभी यह बातचीत लसकर में।

जगदीश ने तुम्हारे हेत किया दर दर में।

क्या कहै करी जा रुचे तुम्हारे घर में।

चाहे कृपा करों चाहे टांप दो बाँध अधर में।

तुम गुरु बनो सब ठौर गुरु कोई क्या है।

उर्दू है कचहरी बीच पड़ी डर क्या है।।3।।

पंडित से गिना लो ठीक सुदिन जोतिस में।

तुम कहीं खाली जगा हो देख चले नोटिस में।

पेस्क सी गिरस्ते दारी मजा नालिस में।

उर्दू कौ घसीटी चैन करो घिम दिम में।

क्या नफा धरा है और किसी कोसिस में।

या नक़ल नवीसी बनी है अहै दिन बिस में।

नहीं किसी के तावे नहीं किसी की रिम में।

तुम बनो पूत कुतवाल जाय पुलिस में।

सब कुटुंब तुम्हारे तुरंत ढुंकै जा उम में।

वह पढ़ब लिखब को बात गनै को किस में।

नहि मिडिल इनितरिम पास कै दहै जिम में।

कोई दीन दुखी लो भूल चूक डिसमिस में।

कर साला ससुर दो भाई भतीजा तिस में।

हम हमी और दुनिया में कहाँ कोई क्या है।

उर्दू है कचहरी बीच पड़ी डर क्या है।।3।।

यह बात स्वारथी कहै जिन्है सुध नाही।

को कौन कहां बसते हैं किधर को जाहीं।

है जनम जिन्हों का हिंद हिन्दू कुल माहि।

जन्मी है सुलच्छन माय पूत जिन का हीं।

जिन मांही पड़ी साँची सी पिता परछाही।

वे हेर फेर कुल वेद रीति समझाहीं।

हिन्दी है जिन्हीं का बोल सुबोल सुनाही।

फिर हरूफ नागरी उन्हें हमेस सुहा ही।

चहै जारी कचहरिन बीच शुद्ध हरुफांही।

जो अलस नागरी लिखत बढ़त छलनाही।

वह राज प्रजा रुख देख छोट बड़ पाहीं।

जो बढ़ प्रपंच फसाद माफ बिल गाही।

रैयत पार राजा को भुन वर बाहीं।

जबरदस्त का ठेंगा सिर पर घोरी घरा हीं।

आया है समै नियराय दूर भव क्या है।

उर्दू है कचहरी बीच पड़ी डर क्या है।।4।।

प्र.स.

भारत जीवन (अंक-6)

6 अप्रैल, 1885

कविता

सर्व गुण आगरी विमल शुभ नागरी है कोविद

बरबानी निज बानी पहिचानिये।

छाड़ते याहि धर्म कम्मशम्म छूट जात बूड़जात

उन्नति को पोत उर आनिये।।

उर्दू है भ्रष्ट यामे बड़े-बड़े कष्ट 'नब पं च

कहे स्पष्ट अष्ट याम यह ठानिये।।

भाषा शिरोमणि है भाषो यही भाषा सब जाने।

जो न भाषाताहिशाषा मृग जानिये।।1।।

करिहैं उदधार निज भाषा को बार-बार हायकै

उदाहर यह शुमार मनतानिये।।

करन समर्थन मगन हो यत्र धन सुजन समूह

मिलि प्रेम सरसानिये।।

जासे हो विशुद्ध बुद्धि ऋद्धि सिद्ध बुद्धि हो

देशहू समृद्धि होय ऐसी बृत मानिये।।

पंचमन राखा है यही अभिलाषा अब जानै जो

न भाषा ताहि शाखा मृग जानिये।।2।।

भाग-1, अंक-1

27 अप्रैल, 1885

पृ. 2-3

स. शिवनाथ शर्मा

लखनऊ से प्रकाशित

'र से रसिकन सन समद बढ़ावै हित 'सि से

सिथिलन को उठावन प्रकाश भयो।

'क से निज भाषा की उन्नति करन हित

नगारी मा 'पंच के अभाव सो विकास भयो।

चतुर समूह अब चकर समझलेउ कैसे कम धन

में अहत दीही हास भयो

मंगल करण अरु आलस हरण हित ईस की

शरण होय रसिक दुभास भये।।

भाग-1, अंक-1

17 अप्रैल, 1885

पृ. सं. 2-3

स. शिवनाथ शर्मा

लखनऊ से प्रकाशित

प्रेरित पत्र

दोहा

मंगल भव मंगल भवन मंगल नाम उदार ।

सुख दायक नायक भुवन वन्दों सो करतार ॥

जासु कृपा लहि जगत मो उपजहि भूप अनेक ।

अधिक एक ते एक में बल बुद्धि धर्म विवेक ॥

यहि कलि काल दुकाल में बड़ी दृपदरि जान ।

जो अंग्रेजहीं राज है करी प्रजा विहान ॥

जेते दुख तेते दौरे बाढ़्यो भूख सु अपार ।

जब सो भारत में भयो कल छापा विस्तार ॥

उन्नति विधा होत अति गावत यश संसार ।

देखो छीन में छपत है पुस्तक लाख हज़ार ॥

विधा धन सम धन नहीं विधा सम नही हित ।

विधा सम परिवार नहि विधा सम नहि वित ॥

विधा ही सो देखिये लाट जज्ज सब होय ।

विधा ही सो ब्रह्म पद ज्ञान लहै सब कोय ॥

विधोन्नति में ऐसही रहै जू तत्पर लोग ।

धर्म बहै संपति बढ़ैहोय महा सुख भोग ||

रंच दिया सर्कार जो करै हिन्द पर और |

हिन्दी दफ्तर हिन्द में होई जात सब ठौर ||

ताबे तो कैसी हिन्द की पूरी उन्नति होय |

हिन्दी बाढ़ै हर्ष सो उर्दू भागै रोय ||

बिस्मिल्लाह को छोड़ के श्री गणेश को नाम |

सब कोऊ सुमिरन को निसुदिन आठो जाम ||

तब हिन्दी को देखियों चौगुण बाढ़ै जोति |

बिन आदर जो दुबरी देखि जरै सब सोखि ||

अलंकार सब पहिर के महा अनुपम होय |

कजरी गावै प्रेम सो भारत उन्नति होय ||

कजरी

आगे भारत के कुदिनयाँ हिन्दी खेले कजरी ।

दफ्तर बैठी झेलूआ झूले गावे प्रेम भरी ।

हिन्दू तुरुक खड़े सेवा में उर्दू रुदन करी ।

आर्य्य सभा की उन्नति होवै सब कुरीति सुधरी ।

बैरी फुट को लातन मारै इकताई सगरी ।

आपका कृपाभिलाषी

साधोगिरी सेकेण्डमास्टर

ए॰बी॰ स्कूल ज्ञानपुर,मिर्ज़ापुर

पत्रिका- भारत जीवन

पृष्ठ॰संख्या-5-6

अंक-1 फरवरी 1886

चज्जरिक

देखों उठ ठाढ़े मातु नगरी पुकारे ||टेक||

कित गए महराज राम विक्रम अरु भोज नाम

जग शशि हरिचन्द काम अस्त है सिधारे ||टेक||

खोलो चख चारु भारू तुम को सब करि के छार

झोको कर गहि उबार आर्य बंश प्यारे ||टेक||

जाहीं टहल सुख निवास तहही अब

दुख रस डोलत घर-घर नीरस हिन्दूवी दुखारे ||टेक||

लखि के कवि रामनाथ भिक्षा हित किए हाथ

पोषण तिही दिये साथ खड़ी द्वार हरि ||टेक||

रामनाथ शुक्ल

पत्रिका-भारत जीवन

पृष्ठ॰ संख्या-6

अंक-1 फरवरी 1886

हिन्दी प्रार्थना

दोहा

विघ्न हरन मंगल करन असरन सरन कृपाल |

सुर पालक ढालक असुर डुबो सो दीन दयाल ||1||

सब उर प्रेरक है तुही तुही करौ सो होय |

हे प्रभु क्यों नहीं लेत सुधि मलेच्छिन जालहिं खोय ||2||

हे दीनबंधु करुणानिधान घाट-घाट वासी अनन्त अविनाशी

मेरा पिंड इस यमिनी-कामिनी से क्यों नही छुड़त

कवित्त

किधौं करुनानिधान करुना को त्याग कीन्हौ |

किधौ दयालुता से नाथ हाथ मोरी है |

किधौं वह पौरुष सिराय गयो तेरो नाथ आते सब दीन की कठोर वन्दी धोरी है |

किधौं अब श्रवण ते न आरत की वैन सुनो |

किधौं अनाकनी हमरो ओर जोरी ही |

दीनबंधुताई को न छोड़िए कृपानिधान नहीं तो बड़ाई में तिहारो

नाथ थोरी है |

सारे गिरि कारे सियाही भरी सिंधु धरै कल्पवृक्ष शाखन की लेखनी सुखी है |

शारदा गनेश कोटि बैठिके हमेश लिखै भूमि के समान कोटि पात्र जो बनाई है |

पार कोटि वर्ष लागी पावतेन कृपासिंधु साधो भनी जेती प्रभु तेरी प्रभुताई है|

जानि के बड़ाई निज कीजिये सहाय बेगि दीनबंधुताई कहाँ दीनबंधुताई है ||4||

हे प्रिय आर्य समाज ! आप लोग इन दिनो मेरी कौन सी सुध लेते है,आप लोग कुछ बोलते नहीं है इससे मेरा जी बहुत घबराता है, भारत जीवन जो किसचमुच भारत जीवन है वह भी आजकल कुछ नहीं करते है; हाय ! मै ऐसी हीं अभागिनी हूँ , देखे ईश्वर कब मेरी सुध लेता है |

आजू कालि चुप चाप कस बैठी आर्य समाज |

उर्दू बीबी जाल करी अजहुं रही विराज ||5||

जा दिन ते या हिन्द में छाई यामिनी वास |

ता दिन ते कमती भयो धन सम्पति आराम ||6||

आर्य्य सभा अब कीजिये ऐसौ कछु उपाय |

यह मलेच्छिनी दूर हो उन्नति हिन्द दिखाय ||7||

हौं हिन्दी या हिन्द कि एक बरन सति सार ।

गिरगिट सी यह कामिनी बदलै रूप अपार ||8||

नारी से वारी बनै भूप से हौए भूत ।

पानी सो नानी बनै देखों चरित अनूप ||9||

ऐसी नारी कुनारि को हिन्दू करै प्रतीत ।

राखहीं अपने भवन में देखो कठिन कुरित ||10||

पर नारी से जो करै प्रीति जगत में कोय ।

ताको होवे नर्क हठी धर्म ग्रंथ में जोय ||11||

याते यहि को मार के दीजे देश निकारि ।

तब तो भारत देश में सुख कि बहै बयारि ||12||

स्वामी है यहि देश को अँग्रेजी सरकार ।

सब समाज मिलि एक बहै तापे करो पुकार ||13||

ऐसी स्वामी जगत में इजो भयो न कोय ।

नीति निधान ध्याभवन सुखदायक दुख खोय ||14||

हे प्यारे आर्य्य लोगों !यदि आप सब दया करके दिल खोल बम बोल सरकार चित्तउदार से पुकार करै तो आशा है कि अवश्य सरकार नीति नागर हमारे ऊपर दया करेगी | आप लोग भय किस बात का करते है यदि कोई डर भी हो तो क्या संदेह है कार्ज साधन में बहुधा डर भी होता है |

सवैया

कारज साधन के थल में भय होत अनेक कहै सब कोई ।

जाय नहीं जब लो भय बीच नही तबलो कछु कार्ज होई ।

संक विसारि धसी निरसंक जौ भाग कसै लागी लाग सो जोई ।

जो उबार जिय इश कृपा तो महा सुख पीछे लहै पुनि सोई ॥15॥

अब बार-बार यहि प्रार्थना है कि आप लोग कृपा करके वेग हीं इस मलेच्छिनी से मेरो गला छुड़ाइये और अपने देश की उन्नति कीजिये देखिये मै बड़ी दुखिया हूँ मेरी सुध मत भुलाइये॥

आपका कृपाभिलाषी

साधोगिरी ज्ञानपुर मिर्ज़ापुर

पत्रिका-भारत जीवन

पृष्ठ॰ संख्या-6

अंक-23 अगस्त 1886

नागरी (बिहार बन्धु 1 जनवरी, 1895)

ना: नाचिकेतु नाकनाथ, नाटय प्रिय नाथ और नाइलाक्ष नारायण जाके त्रिभुवन है।

नात्र नासिकामल औ नाभिज महान देव नाकसद नादर जे नाद विलक्षण है।

नाथाधिनाथ नाग भूषण नगेन्æ देव जपत नाहि नाम नाश होत दुख जन है।

मंगल जू भनत धरि टेक नारायण पै नागरि नाकार नाथ येते देव गण है।

ग: गदी गणदेव गरूड़ बाहन गणेश जू गद मरकंठ गवीशर गुण खानि ये। गदाधर गंधवाह और हू गणाग्रणी देव जू गदाग्रज गभसित आदि मानिये। गण और गगनेश जू प्रचंड गण नायिका पुनि सो गणाधिप गंभीर हित आनिये।

मंगल कौ मूल देव गणपति गरिश्ट जू नागरी गकार नाथ येते देव जानिये।

री: रिधम दूरधर्ष बज्र हस्त रिपु देव जू और रिधिनाथ देव गुण के निधान है।

रिषभ रिषिवल्लभ और रिद्धि काम दाइनी देव रिपु हंता रिषिनाथ यश खान है।

रिभु रितुराज स्वामि और हूँ रिभुक्ष जू श्रुति रिग्वेद रिण मीचन भगवान है।

मंगल जू रिंपजय त्रिलोकि नाथ बंदिये नागरी रिकार देव येते महामान है।

शुद्ध अति साफ याते जल नहिं हीनवारी चाहो सो खिलौ नहिं अखरन कौ खागरी।

रावरे सरीखे श्रेष्ठ सुजन सयानन को नागरी गुणागरी अति ही प्रिय लागरी।सहण सुभाव सिद्ध नागरी नरेश भाषा मनोभिरंजन यदि नागरी ही नागरी।

कहै पुकार मंगल सवल सुजान सुनो निपट निदान के हैं फर भेर छागरी।।

नागरी नगीना नहि नीकी जल लागु केहि चन्द के प्रकाशे नीकी लागु पृथराज के।

फैजी सुलतान खान खान बुद्धिमान नीकी लागु सो अकव्वर यौन राज सिर्ताज की।

नीकी लागु गौस गीयर्सन आदि गौरवान एशिया सोसाइटी के सम्य इंगराज को।

ऐसे ऐसे हिन्द मुसलमान क्रिस्तानन को नीकी पै फीकी मंगल लागु जाल साज को।

अक्षर अनेक नहिं एक उच्चारण कौ और ना आकार एक बहुत आखरन कौं।

सकै हो सहज न रूप परिवर्तन याकौ अक्षर अनोखे दाव देनजाल जाए करन को।

चलै ना उलटी चाल सुगति मराल याकी मानी सतबादी सादी नारी सुधरन को।

अकबर लुभायो लोखि जर्मन जुदायो जानि मंगल है ऐसी भाषा आर्य करन को।

अक्षय भंडार त्रुटि नेकु सुशवदन को सुंदर सुमंजु लेख गध गुण खानी को।

पध में प्रसिद्ध पासन दूजी नहिं जगत बीच वचित्र शब्दार्थ अलंकार लासानी कौ।

तुलना करीये यदि याको सब भाषन सो दासीवत दीखै सब भाषा भाषारानी को।

मधुर मनोहर सो मंगल लावन्य भई सादृश संतान हे परम देव बानी को।।

पारसी

बिन्दू बढ़ाए एक बदले बहु अर्थ जाकी देत फागी वाप ओ मेकिर अनेकन कौ।

नुक्ता प्रसिद्ध जाकी करत काज सिद्धबाकी जाके जी जाल फांसू फंद ओ फरेवश कौ।

लिखैं कछु पढ़े और बदले अर्थ और किये बिन गौर इः पाठय सुचेतन कौ।

मंगल ध्यान त्यागिये सुजान इस भाषा कौ पढ़िवे में जाके भ्रम होत धरेनन को।

(मंगल चन्द्र टेक नारायण विरचित)

भाग-1, अंक-1

1 जनवरी, 1895

पृ. 2-3

दोहा

(जाती हुई उर्दू के प्रति कथन)

अब उर्दू तुम टिक रही, कुछ दिन अन्तर बेद
जहाँ न्याय होवे नहीं, साँच झूठ में भेद।
अथवा तुमको है भलो, पांचालक को देश।
शिष्य शिरोमणि उठि गये, काये तहाँ क्लेश।
व्यंकट रमन महीप में, करहिं अकंटक राज।
कहु सांचे हिन्द्रन से, कहा तिहारी काज।
बहुत दिननलो सुख कियो, बान्धवेश को दश।
अब हमरे निज धर्म में, तुम की सदा कलेश।
धर्म न्या चाहे नृपति, पन्थ तुम्हारे और।
रही ब्रिटिश की श्वासिनी, अब नहीं मिलि है कौर।
भारत माता के रहत, करि नहिं सकी अपील।
रहत कचहरी जग पगो, तुम्हारे हित तातील।
पशिचम उत्तर देश में, जो कोउ बुझा न्याय।
बिन देखे पंजाब के, कतहूँ न पैहो ठांव।
जो केहु पंजाबी जगें, देई गुरू मुखि जोरि।

तौ जनु भारत खण्ड में, भै अति दूर्गित तोरि।

ताते तुम जनि दुख करी, जाह देश ईशान।

फूटि रकाबी अब गई, सूथन भई पुरान।।

बिहार बन्धु

नं. 11

नवम्बर 1895

पृ.सं. 14-15

देश विषय

पच्छिम सन आस याको चाहत कास रूस पूरब मैं ब्रह्म दिख अधिकानों है

अजहूं न उत्तर सों तिब्बत झमेलो गयो जहां तहां काल को प्रभाव चमकानो हो |

एहो नंद्रेखरी क़हत हरिऔध सांची याहू पै टिकस को कलेस करुआनो है |

बेगहीं उबार लीजै भात गहि बांह ना तो भारत विचारो को बसन्त (बस अन्त) दरसानों है ||8||

अजहूं न गोवध मिटयो है भूमि भारत सों हिन्दी को प्रचार हूं भयो न मनमानों है |

उर्दू निगोड़ी को नस्योन फरफंद फ़ेल टिकस कलेस हूँ टस्यों न अधिकानों है|

हरिऔध आपस को बैर हूँ विनास्यों नाही बांलक विवाह को न बंधन बसानी है|

याते हम जानतन संकहु कछु है यामे भारत विचारो को बसन्त(बस अन्त)दरसानों है ||9||

दिन दिन बाकि दसा होत जात दीन ही है याको दुख देखहुं बनाय बहुतानों है|

धन बल विधा कला पौरुख नसानो सबै फुट बैर कलह विवाद अधिकानों है|

हरिऔध जदपि सुधारत है सरकार तदपि विरोध सो न सुफल दिखानों है|

एरे मेरे भीत मिलि मेल करी लीजै नातो भारत विचारे को बसन्त(बस अन्त) दरसानों है ||10||

पंडित अयोध्या प्रसाद हरिऔध

निजामाबादवासी विरचित (काशी कवि समाज)

समस्यापूर्ति , बसन्त दरसानों हो ||

पत्रिका-भारत जीवन

पृष्ठ॰संख्या-4

अंक-4,25 मार्च 1889

नागरी ! तेरी यह दशा !!

१.

श्री युक्त नागरी ! निहारी दशा तिहारी
होवे विषाद मन माहिं अतीव भारी |
हा!हन्त!लोग कत मातु तुम्है बिसारी ?
सेवैं अजान उरदू उर माहिं धारी ||

२.

मांता त्वदीय सूचि संस्कृत देववानी
वर्णावली तप मनोहर रुपखानी |
अत्यंत शुद्ध लिपि होति सदैव तेरी
अल्प प्रयास महँ सीधी सधै घनेरी ||

३.

अत्यल्प बालकछु मॉस गए छू साता
होवैं प्रवीण सिखि तोहिं छिपी न बाता|
मूढाति मूढ जिन दीख न पाठशाला
तेऊ पढैं तुहिं बिना श्रम सर्वकाला ||

४.

एतादृशी सरल ,सुन्दर,शुद्ध सोई

तू नागरीजननी ! जानत सर्व कोई |

तौहू तुम्हैं चहहिं जे न जड़त्वपागे

ते कामधेनु तजि आक दुहैं अभागे ||

५.

तेरो समान रुचिरा, सरसा रसाला ,

शोभायुता ,सुमधुर,सगुन,विशाला |

भाषा न अन्य यहि कल अहो !दिखाई

बोलैं निशअँक हम यौं ,स्वभुजा उठाई ||

६.

श्री सूरदास ,तुलसी ,अरु खानखाना

क्षेमेन्द्र ,केशव,कविन्द्र ,कवीश, नाना |

छायो दिगन्त यश जो इनको अपारा

मो त्वत्प्रसाद यक्ष नागरी ! देवी! सारा!||

७.

पद्मावती जिन रची ललिता ललामा

विख्यात जे अपर कादिर आदि नामा|

इस्लाम जाति; तउ कै तिन मातु तोरी

आराधना ; सुयशराशि घनी बटोरी ||

८.

सन्मान्य ग्राउज कलेक्टर सु-प्रधाना

श्रीमदग्रियर्सन समाSन्य महा महाना |

सेवा त्वदीप करि मातु लही बड़ाई

किर्तिध्वजा धरणि पै अपनी उड़ाई ||

९.

अन्याय जाति जनहु बनि भक्त तेरे

गावैं त्वदीय गुण नित्य नए घनेरे |

तौं जो तिहारि हम सर्व करें न पूजा

हा ! हा ! अनर्थ नहिं या सम अन्य दूजा ||

१०.

भ्राता, पिता,सूत,सुता,दयिता,सुशीला

त्यागैं मनुष्य कहँ देखि बिपतिलीला |

पै प्राणनाथ यदि होहि तऊ न माता

होवै वियुक्त सूत ते विलगाय गाता ||

११.

माता-ममत्व जस वेद पुराण भाखा

ततुल्य है अपर केवल मातृ-भाषा |

आजन्म जो विमुख ताहू विपति माहि

आवैं सदैव सुख में सुई ;अन्य नाहि ||

१२.

हिन्दी !दयालु इतनी तुम हाय !ताहि

हिन्दू तजैं यदि ,अन्करण ,दोष काही ?

दुर्भाग्यदण्डहत बूढी विवेता जाई;

होवै परन्तु दुःख देखि कृतध्न्वाई ||

१३.

न्यायालयादी महँ लेखक वृन्द बाढ़ी

हस्तप्रलम्बपरिणाम हिलाय दाढ़ी |

देखौ!अहो !कुलिशकर्कश शब्द भाखैं

मानापमान तव,ते मन में न राखै |

१४.

"देशोपकार करिबे" इमि बोलि, बोरा

लै ,लांडग लेकचर उडावत जे प्रविरा |

त्व्न्नाम ते सुनत कोसन दूरि भागै

पन्नदिह लिखन में तुहिं नाअनुरागैं ||

१५.

शांडिल्य आदि मुनिनायक वंशधारी

हृत्कंप होहि सुनि नागरी ! तोहिं टारी|

हा ! हन्त ! पुत्र कर माहिं धरैं करीमा

लज्जा न आव तनिकौ तिनके हिए मा |

१६.

जाके प्रचार बिनु लाखन लोग धाई

लै लै समन्स वहू ,ढूंढत गाव जाई |

पावैं तऊ न तिन वाचनहार; भाई

तातें ,भए विमुख ता सन, का भलाई ||

१७.

जाके बिना कचहरी घर लोग घेरे

ताकै परारिमुख जाय बड़े सबेरे |

न प्रेम तासु जिनके मन माहिं जागै

हा ! हा! विलोकी तिन ,पातक-पुंज लागै ||

१८.

जाको लिखै सहज बालक ,वृद्ध,नारी ,

जामे न भूल इक बिन्दु विसर्ग वारि |

सहर्म जासु परिशीलन में सदाहीं

ताको करैं स्तुति कहां लगी ?शक्ति नाही ||

१९.

देखौ ! स्वदेशरत्न !करौ विचार

सत्कार नागरिही केर करे उबारा|

हे !हेलना न करी तासु ,सुनौ पुकारा

किन्हें विलम्ब बिगरै निज काज सारा ||

२०.

कल्याणी ! नागरी ! इती बिनती सुनिजै

माता ! दयावती !दया न कमी करी जै |

हुजै अधीर जनि ,यदि्प होति देरी

सेवा अवश्य करिहैं अब सर्व तेरी ||

२१.

सप्रेम जोरी कर तोहिं मम प्रणामा

त्वडभक्त तें कहुं कहुं चमकै सुनामा |

मेरी नमोऽस्तु तिनहू कहँ बार बारा

ते धन्य, धन्य कुलदीप कृतोपकारा ||

महावीर प्रसाद दिवेदी

नागरी प्रचारिणी पत्रिका ,काशी

तीसरे भाग की पहली संख्या में

प्रकाशित, पृ.स. १२-१६

आशा

१.

अहो देवी आशे ! प्रशंषा तिहारी|

सकै कै यथावत न जिह्वा हमारी ||

माहिमण्डल व्योम पाताल माहि |

खान शक्ति न व्यापत तेरी सदाही||

२.

कलानाथ तेरी कृषादृष्टि पाई

कलहीनहू नित्य देवै दिखाई |

ग्रहग्रस्त तेजो निधी सूर्य सोई

प्रकाशे प्रभा को तवाधीन होई ||

३.

उतारै न एकौ धरी जो अहिशा

धरा धारि राखि किए नम्र शीशा ||

कहौं सत्य सो सर्व तेरो प्रभावा

यही सो तव स्त्रोत है मोहिं भावा ||

४.

जिती कल्पना औ मनोवृति जेती

तिहारिहि दासी सदा सर्व तेती

न मानौ जू पूछो स्वयं चित काहीं

विना आश जावै कहुहूँ कि नाही||

५.

धनी निर्धनीहूँ जरा जीर्ग गता

वटी चूर्ण लेहादि पुश्तिप्रदाता

तब प्रेरणा पाय सवै सबेरे

बहावे वृथा द्रव्य कन्द्पर्चरे||

६.

ज्वारी,जन्मरोगी, क्षभी क्षीणदेहा

वशीभूत तेरे भए बैठि गेहा

नई नित्य विज्ञापना देखि देखि

ठगावै; न पै हनी मानै विशेषी||

७.

प्रियाहीन हु लोक में लोग नाना

लहै कामिनी कामपत्री समाना

गहै पाणिपंगे रुह प्रेमबोरे

सबै सो अहो! एक तेरे निहोरे||

८.

प्रजावर्ग को कै वशीभूत आशे

दिखावै धने आपने तू तमाशे

महासर्व हूँ त्व्यादृष्टि पाई

छुवै चंद्रमा हाथ ऊँचो उठाई||

९.

बिना परै के पंगू पायोधि पारा

क्षणैकार्ड में लांघी ऊँचे पहारा

जहाँ जी चहै जाय नाना प्रकारा

विलोकै छटा पाय तेरी सहारा ||

१०.

गए गर्भही में दऊ नैन जाके

सुनौ हौं सुनाऊ समाचार ताके

आहो! सोऊ आश्क्रिपा पाय तारा

गिनै सर्व आकाश के बीस बार||

११.

महामुकहू जे हिए तोही धारै

प्रिय पास ते प्रेमगाथा उचारैं

बिना कर्णशक्ति त्व्दाकृष्ट नाना

सुनै बात सौं कोस कि सावधान ||

१२.

अहैं लोग मतुल्य जे पाद्रामी

त्वालम्ब है जोतिजोड़ी सुनामी

फिरैं नित्य सानन्द संध्या सबेरे

न गाड़ी न घोडा न साईस मेरे||

१३.

महादुख में, शोक में, रोग माही

विपल्काल में, कालहु में सदाही

लखैं लोग आशे! सुसता तिहारी

गतप्राणवत त्वदिना प्राणधारी||

१४.

युवा आश के पाश ते बद्ध नाना

करैं काम बेदम जाने जहाना

बिना तोहिं कैसे करै धैर्यधारी

कई वर्ष लौं कोउ उम्मेदवारी ||

१५.

गृहस्थाश्रमी, सयमी भूमिपाला

युवा बाल वृद्धादी जो जीवमाला

कहूँ कोटि में एक है वीतपाया

न तेरो जहाँ जागरूक प्रतापा||

१६.

अपुत्री जिमैं पाय तेरो प्रसादा

तीय भतृहीना तजैं दुर्विषादा

पित्गोह में कन्यका कमजारी

कहैं वर्ष बाईस लौह कुमारी||

१७.

तुम्ही मोहिनी ,तुहि मायाविनी हैं

तिहूँ लोक कि तुहि संज्जीवनी है

कहैं तू न जो विश्व-जात-प्रसारा

बनै दण्ड में दण्डकारण्या सारा||

१८.

उडावै शरन्मेध को वायु जैसे

इतै ते उतै को चहुँ ओर तैसे

मनोवृति को तू सदैव भ्रमावै

न विश्राम एक क्षनौ लेन पावे||

१९.

ण पृथ्वी ण पाताल ण स्वर्गधामा

बचै एकहू ,तू फिरे अष्टयामा

असी रेल सौ तार विद्युत् हजारा

भगौं साथ तेरे जू पावै ण पारा||

२०.

कछु प्रार्थना है हमारी सुनीजै

जगधात्री आशे! कृपाकोर कीजै

सबै दें कि देवी! सामर्थ्य तेरी

यही धरना हा सविश्वास मेरी||

२१.

गुणग्राम की आगरी नगरीं तै

प्रजा की जू सन्मानसोजागरी है

मिलै ताहि राजाश्रय क्षेमकारी

यही पुरियों एक आशा हमारी ||

इति ||

महावीर प्रसाद दिवेदी
नागरी प्रचारिणी सभा ,
तीसरा भाग(१८९९)
पृष्ट संख्या-३

रोला छन्द

धन्य हमरे सौभाग्य दिवस इत दैव पठाये।

परम बिबेकी धीर बीर मेकडालन आये।।

राज काज में रहीं सभी थल उरदू भाखा।

लाट महोदय आई नागरी को पत राखा।।1।।

करि हिन्दी परचार भरत भाषाहि जिआयो।।

भारतबासी लोग करे चित अति हरखायो।।

अब इन कहँ करतार सूखी राखै सबही विधि।।

सज्जन परम उदार महाशय विधा गुन निधि।।2।।

छन्द

परम शुभ चिन्तक हमारे सकल गुण के धाम।

मदनमोहन मालवीय प्रसिद्ध जासु सुनाम।।

सुमिरि उत्तम करनि तिन की âदय होत आराम।

करत नाही बनत बरनन तासु सूद गुन ग्राम।।3।।

सवैया

देश हितैषिता मैं मनलाइ कियो सबही विधि ते श्रम भारी।

हिन्दी प्रचार करावनहार अहो इनकी मति की बलिहारी।।

भारतवासी कितेक अहै पर सांचे ये भारत के उपकारी।।

दीपित व्योम नछत्र किते तउ चंदहि ते निसि होत उजारी।।4।।

हरिमंगल मिश्रा

हिन्दी प्रदीप

सन 1900

जनवरी, फरवरी मार्च संयुक्तांक

जिल्द 23